चिंतन-मनन

जीवन कला

अक्षयचन्द्र शर्मा


वाणी निलयम्

प्रकाशक
वाणी निलयम्
रानी बाजार
बीकानेर (राजस्थान)

रूपा
प० अक्षयचन्द्र शर्मा
१० जवाहरलाल नेहरू रोड
कलकत्ता - ७०० ०१३
दूरभाष २२८ ६०४५

मुद्रक
गिरनी प्रिन्टर्स
१६ मैंगो लेन
कलकत्ता - ७०० ००१

प्रथम संस्करण १९९६
द्वितीय संस्करण १९९७
मूल्य १५० रुपये

'चिन्तन-मनन' एक प्रकाश-यात्रा

"जनसत्ता" के कलकत्ता सस्करण मे आज से चार साल पहले जब "चितन-मनन" स्तभ और साधु-सतो के प्रवचनो के समाचार छापने शुरू किए थे, तो कुछ प्रगतिशील प्रबुद्ध-पाठको की तीखी प्रतिक्रियाए हमे मिलीं। लेकिन अधिकाश पाठको ने "चितन मनन" स्तभ और प्रवचन - समाचारो को पसद भी किया। जिन पाठको की तीखी प्रतिक्रियाए थीं उनका कहना था कि हम धार्मिक समाचारो को अधिक महत्व देते हैं। ऐसे पाठको से आमने-सामने भी बाते हुई। मैंने उन्हे बताया कि हम एक ओर जहा आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक, बौद्धिक, राजनीतिक समाचार और विचार छापते हैं।

वहीं हम पाठको मे आध्यात्मिक चेतना भी जाग्रत् करना चाहते हैं। यदि हम किसी भी दल के नेता का वह भाषण जो कि आम-आदमी की भौतिक आवश्यकताओ मसलन रोजी-रोटी कपडा-मकान और राशन पानी की बात करता है या राजनीतिक चेतना जाग्रत् करने का भाषण देता है तो उसे भी हम पहले पेज पर दोहरे या तिहरे कॉलम मे छापते हैं। वैसे ही सामाजिक, सास्कृतिक, साहित्यिक सस्थाओ और उनकी गतिविधिया को भी अखबार मे भरपूर स्थान देते हैं। फिर आध्यात्मिक चेतना की जागृति के समाचारो और स्तभो से परहेज क्यो?

हम किसी धर्म के कर्मकाड या उसकी रूढियो अथवा परपराओ का प्रचार नहीं करते। केवल साधु सतो की वह वाणी जो आम आदमी म नैतिकता और उसके अतरमन के विकास की प्रेरणा देती है, प्रकाशित करते हैं। आम-आदमी के भौतिक विकास के साथ-साथ उसका आध्यात्मिक विकास भी जरूरी है। वह जाने कि वह कौन है? क्यो इस जग मे आया है? उसका समाज, देश और सपूर्ण विश्व के प्रति क्या दायित्व है? वह

स्वय की आतरिक चेतना का विकास कैसे करे? आधे-अधूरे इसान की बजाय एक पूरा नेक इसान कैसे बने? इन सब बातो का खुलासा करने वाली साधु-सतो की वाणियो को हमने प्रवचन-समाचारो और "चितन-मनन" कॉलम मे स्थान दिया। शुरु की तीखी प्रतिक्रियाओ के बाद आम पाठक ने इस बात को स्वीकार किया कि मनुष्य मे आध्यात्मिक चेतना का जागरण भी जरूरी है।

"चितन-मनन" स्तभ पाठको का प्रतिदिन का पाथेय है। पहले यह स्तभ सपादक स्वय भिन्न-भिन्न पुस्तको, साधु सतो की बातो, उपदेश कथाओ और प्रेरणास्पद-प्रसगो से लेकर अपनी भाषा शैली मे आप तक पहुचाते थे लेकिन इस बात का हम ख्याल रखते थे कि "चितन-मनन" कॉलम में किसी लेखक या किसी मतमतातर के साधु-सत या धार्मिक नेता का नाम न जाए। इसकी भी एक वजह थी कि इस स्तभ को हम सभी निहित विश्वासो का प्रतीक स्वरूप बनाना चाहते थे।

प्राय यह देखा गया है कि कट्टरपथी "चितन-मनन" के नीचे दिए गए नाम को पढकर ही उस पर नजर उठा लेते थे फिर चाहे वह कथा कितनी ही शाश्वत, सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सार्वभौम क्यो न हो। हर इसान चितन करता है। फिर वह चाहे रोजी रोटी राशन पानी और अन्य भौतिक आवश्यकताओ का चितन करे अथवा स्वय के आतरिक विकास का। चितन के बाद उस पर जो मनन करे वही अततोगत्वा मुनित्व की ओर अग्रसर होता है। "चितन-मनन" रोज का विचार पाथेय है। यदि किसी एक पाठक को भी वह प्रेरित करे तो भी बहुत बडी उपलब्धि है। आखिर एक-एक करके ही तो ग्यारह होते हैं।

पिछले लगभग चार सालो से यह स्तभ प्रसिद्ध साहित्य मनीषी शिक्षाविद् और गाधीवादी विचारक पडित अक्षयचद्र शर्मा लिख रहे हैं।

प० शर्मा राजस्थान के हैं। इसलिए उनके लिखे "चितन-मनन" प्रसगो म आपको कभी-कभी माटी की गध, लोक साहित्यकारा के दोहो, वाणियो और कथाआ के आधार पर रोचक विवेचन भी मिलता है। लेकिन यह माटी की गध लोक कल्याण की सार्वदेशिक भावना से सम्पृक्त है। सरल और सहज भापा-शैली, समसामयिक विपयो, प्रसगो और घटनाओ को पाराणिक अथवा लोकसदर्भो मे गूथ कर वे रोज का पाथेय पाठको को परोसते हैं। सैकडो पाठक इस "चितन-मनन" स्तभ की कतरने काट कर सगृहीत भी करते हैं।

अब ये चितन-मनन एक पुस्तकाकार मे आपके सामने आ रहे हैं। यह पुस्तक और उसके "चितन-मनन" के प्रसग समाज मे बौद्धिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और सास्कृतिक चेतना जाग्रत् करने मे अवश्य सफल होगे। यह पुस्तक सचमुच सग्रहणीय तो होगी ही लेकिन नेक इसान बनाने के एक छोटे आदोलन का भी स्वरूप होगी।

श्याम आचार्य

अपनी ओर से

ज्ञान के अतल अकूल महा सागर के तट पर, मनु-पुत्र मानव एक बार चाहे शिशु-सा विस्मित स्तब्ध बना खडा रहा हो, पर, अन्त मे उसने महर्षि अगस्त्य बन सागर को तीन चुल्लुओ मे पीने का सकल्प किया। ये तीन चुल्लू हैं – श्रवण, मनन एव निदिध्यासन।

इन तीनो के मध्यवर्ती है मनन, जो एक ओर सम्यक् श्रवण का सुफल है और निदिध्यासन का अजस्र प्रेरणा-स्रोत।

'चिन्तन-मनन' का यह द्वन्द्व एक दूसरे का पूरक है। अन्त मे चिन्तन अपने को खोकर मनन में समाहित हो जाता है। चिन्तन मे किंचित् चिन्ता है, थोडी बौद्धिक प्रक्रिया मुखर है और बाह्य मुखता भी-पर इसकी परिणति 'मनन' में है जहा मन्थन से प्राप्त नवनीत है, अन्तर्मुखता है और स्वरूप बोध का दिशा-निर्देश।

तभी 'मनन' हरिवश पुराण के अनुसार 'मननान्मुनिरेवासि' 'मनन से ही मुनि बनता है' के साक्ष्य मे मुनि तक की यात्रा करता है। मत्र का भी अर्थ है – जो मनन करने से 'त्र' यानी त्राण करे, रक्षा करे।

कलकत्ता से प्रकाशित दैनिक पत्र 'जनसत्ता' के सम्पादक श्री श्यामसुन्दर आचार्य की आत्मीयता को ही सारा श्रेय है, जिसके कारण मैं इस पत्र के स्तम्भ (कहना चाहिये आलोकस्तम्भ) चितन-मनन म प्रतिदिन लगभग ४ वर्षो से अनेक माध्यमो को – कथा, लोक-कथा, गीत, सूक्ति, इतिहास, साहित्य, दर्शन, प्रभृति को – आधार बना कर सरल सुबोध भाषा मे जीवनानुभव प्रस्तुत करने का प्रयासी हूँ।

मन मे रहता है – ऐसा कुछ कहू – जो उजला हो, मधुर हो, सहज सरल हो, प्रेरक हो, उद्बोधक और हृदय ग्राह्य हो। मधु मधुर हो और पीयूष सा हितकारी भी।

बाते वे ही पुरानी-इतिहास की, सन्तो की, कवि-कोविदो और लोकमानस की – उसे जरा बदल कर, नया बना कर, सुपाच्य बना कर नयी कथन भगिमा से प्रस्तुत करने का यह एक विनम्र प्रयास है। आश्चर्य और आनन्दप्रद है – 'जनसत्ता' के सैकडो पाठक 'चितन-मनन' को प्रतिदिन पढते हैं और अपनी रुचि के अनुसार इसकी 'कतरनें' अपने पास सजो कर रखते हैं।

असल में इस तुमुल कोलाहल कलह मे 'चितन-मनन' सहृदयो को यो भाता है – जैसे 'कामायनीकार' के शब्दो मे 'तपन मे शीतल मद बयार' हो।

'चितन-मनन' के इस पुस्तकाकार प्रकाशन के नेपथ्य मे जो कार्यरत हैं – ये हैं मेरे आत्मीय सर्वश्री पन्नालाल तिवारी एव वशीधर शर्मा, इनको मेरा शुभाशी । मुद्रण एव प्रकाशन नयनाभिराम सुवाच्य हो – इसके लिये श्री गोविन्द शर्मा का पूर्ण सहयोग मिला हे, अत इनको साधुवाद।

श्रीमती उषा केजडीवाल, श्रीमती चन्द्रा रामपुरिया, श्रीमती शोभा कनोई तथा श्रीमती रचना नाहटा ने यदा-कदा 'चितन-मनन' को चाव से सुना है, इससे मुझे पाठकीय दृष्टि व रुचि का बोध होता रहा है, जो मेरे लिये महत्त्वपूर्ण है।

प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशन से मेरे पौत्र एव पौत्रियो को-चि॰ हर्षवर्धन, स्वदेश, सुनील, सुचित्रा, आलोक, सुनन्दा, शिप्रा, शुभ्रा, महिमा, अभिनव एव आदित्य को – इन्हे पढने के बहाने से मुझसे सुनने का अवसर मिल रहा है – यही आतरिक सन्तोष है। प्रपौत्री एव प्रपौत्र चि॰ शची, अकित अपना छपा हुआ नाम पढकर कितने खुश होगे, यह मैं समझ रहा हूँ।

प्रिय चि॰ महेन्द्र एव कमल जयपुरिया 'चितन-मनन' के नियमित पाठक रहे हैं तथा प्रिय महेन्द्र ने मुझे यह बताया कि कलकत्ता निगम के पूर्व अध्यक्ष श्री श्यामसुन्दर गुप्त इस स्तम्भ के मुखर प्रशसक हैं। मुझे आदरणीय श्री गुप्त ने अपने पास रखी हुई कतरनो को दिखाया तथा इन्हे स्वय प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। अनेक पाठको ने भी गुमनाम को जानने के बाद मेरे प्रति व्यक्तिश भूरिश आभार ज्ञापित किया – यह मेरे लिये प्रेरणास्पद है।

'चितन-मनन' की सहस्र से अधिक बची हुई और बढती जा रही सख्या यदि पुस्तकाकार ग्रहण करती है तो मैं इसे प्रसाद रूपसे ग्रहण करता रहूगा।

'चितन-मनन' एक प्रकाश यात्रा – प्राक्कथन रूपसे श्री श्याम आचार्य ने अपनी सम्पादकीय गुरु दायित्व की व्यस्तता मे लिखकर, मेरे स्नेहानुरोध को आदर दिया है, इसके लिये मैं उल्लसित हूँ।

दीपावली (१९९६ ई॰) २०५३ वि॰
वाणी निलयम्
रानी बाजार
बीकानेर (राजस्थान)

विनीत –

समता ही मुक्ति

महाराज बिबसार को निद्रा नहीं आ रही थी। एक सन्यासी ने कह दिया था – 'तुम को नरक मे जाना पडेगा।' दूसरे दिन वह सन्यासी के पास पहुचा और कहने लगा – 'महात्मन्! मेरा सारा राज्य ले लीजिए, सारा राज कोष आपके चरणो मे – इस मूल्य पर मुझे नरक से छुटकारा दिला दीजिए।'

सन्यासी – 'यह राज्य तुम्हारा है, यह धन तुम्हारा। यह गर्व ही तो नरक है। जब तक तुम इनके भरोसे अपने को सब कुछ पाने और खरीदने मे समर्थ समझते हो, तब तक तो केवल नरक का द्वार तुम्हे खुला मिलेगा।

हा, यदि किसी से तुम एक दिन की पूजा का पुण्य खरीद सकते हो तो नरक से मुक्त हो।'

राजा एक मदिर के द्वार के बाहर खडा हो गया। एक बुढिया निकली।

राजा – 'बुढिया मा! तुम आज की पूजा को बेच दो। मुझसे जो चाहो, मागो।'

बुढिया – 'जहा गर्व है, वहा पूजा का नाम न ले। पूजा खरीदने की चीज नहीं, यह तो समता है। जहा अहकार वहा पूजा कहा! बेटा, पूजा की जाती है, खरीदी नहीं जाती।'

राजा का गर्व जाता रहा, उसमे समता का भाव जागा।

नरक? अहकार नरक है।

समता? यही तो मुक्ति है। समता का अर्थ है – मनुष्यता। सुनो स्वर्ग क्या है? सदाचार है। मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

जीवन 'हा' है

जीवन का मडन से शुरू करे, खडन स नहीं। जीवन 'हा' है, 'ना' का मतलब है जीवन की हत्या, मरण। एक बालक ने सिह बनाने की कोशिश की। उसने सिह का नाम सुना था, पर वह जानता था गधे को। उसको मालूम हुआ कि सिह गधे से बहुत ताकतवर, शानदार और ठाठदार होता है। अपनी पूरी कल्पना लगा कर सिह बनाया, पर वह नया बना थोडा इधर-उधर, पर बना गधा ही।

गुरु चित्रकार जोरदार था – उसने बालक की पीठ थपथपाई और कहा – 'क्या बढिया मरोडदार सिह बनाया है। उस्ताद! मैं जब तुम्हारी तरह छोटा था तो कलम पकडने की मुझे तमीज नहीं थी।'

बालक बहुत खुश हुआ। फिर धीरे धीरे उसका हाथ पकडा और गुरु कहने लगा – 'बस, थोडा सा एसा और करो – कैसा लगा!' लडका खुश हो गया, सुधरता गया, बढता गया। फिर एक दिन उसने सिह बना डाला। सिह बनाने में ऐसा रमा कि उस बाल चित्रकार के चित्रित सिह के सामने असली सिह भी नकली नजर आने लगा।

सद्‌भाव, प्रशसा, प्रोत्साहन और प्यार – यही जीवन है। जीवन का विकास है।

स्मरण रहे – मडन सीमेट है, जो जोडता है। खडन हथौडा है, जो तोडता है।

कहीं हम निंदा कर – किसी बनते हुए-उदीयमान सिह को 'गधा' तो नहीं बना रहे हैं! आत्मालोचन करे।

सूक्तियों से ज्योतिर्मय कमरा

आप का कमरा छोटा है, कोई हर्ज नहीं। अपन छोटे कमरे मे आप दुनियाँ को बसा सकते हैं और सदियो का उतार सकते हैं। अपन समय के विश्व के सबसे अधिक याददाश्त के धनी-क्रातिकारी और उससे भी अधिक ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओ के पारदर्शी लाला हरदयाल एम ए ने जिन सूक्तियो से अपन कमरे को ज्योतिर्मय करने को कहा है- वे ये हैं-

सुकरात-जिस जीवन को परीक्षा म नहीं पडना पडा, वह जीने योग्य नहीं।

अरस्तू-केवल जीना ही नहीं, भली भाति जीना।

बुद्ध-प्रेम से घृणा दूर हो जाती है।

क्राइस्ट-एक-दूसरे से प्रेम कीजिए।

गेटे-आधा जीवन जीन की आदत छोडिए, सपूर्ण सद्गुण पूर्ण व सुदर जीवन व्यतीत कीजिए।

शक्सपीयर-अपने प्रति सच्चे बनो।

मार्क्स-ससार के मजदूरो! एक हो जाओ।

हम प्रारभ मे ये और जोड द-बस,

वेद-सगच्छध्व सवदध्व।

उपनिषद्-नायमात्मा बल हीनेन लभ्य ।

गीता-कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

महावीर-अप्पा मे नदण वण (आत्मा ही नदन वन है।)

सफलता के सूत्र

'आधी रात का सन्नाटा। मंदिर म कोई नहीं। एक दिन पैरा से रौंदे जाने वाले पत्थर ने मूर्ति से पूछा, 'मित्र! अभी कोई सुनता नहीं। सच्ची बात बता। हम दोनो एक खान मे पास-पास थे, फिर यह भेद कैसा! सब तेरे सामने सर झुकाते हैं और मुझे पैरो से रौंदते हैं।'

मूर्ति शात, मौन, फिर कहने लगी - 'बात पुरानी है, जब शिल्पी तेरे सामने छैनी, हथौडा लेकर आया तो तू काप गया था और कह रहा था - 'रहने दे तेरी कारीगरी। मैं इसी रूप मे मस्त!' पर, मैं कुछ बोला नहीं। शिल्पी के हथौड पडते रहे, मैं टूटता रहा, टूटता रहा - वह मेरा मौन समर्पण, मेरी सृजन पीडा, उसी के फलस्वरूप मेरी यह दिव्य सभावना उभर आई।'

सचमुच कुछ बनना है तो तप की आग से गुजरना होगा। श्रद्धा, कष्ट सहन, धैर्य और लगन - ये हैं सफलता के सूत्र।

पढो, बढो, चढ़ो, गढ़ो

दीक्षात समारोह है। आज परपरा तोड कर विश्वविद्यालय न किसी नेता का, किसी यशस्वी पडित को, नहीं बुलाया – बुलाया है – एक सत को। सत – जो कभी शास्त्रा का पारगत विद्वान् माना जाता था पर, अब ज्ञान गर्व छोडकर लोक भाषा व लोक जीवन के साथ एकाकार है।

आते ही सत न स्नातका से सीधे कहना शुरू किया।

'मेरी आत्माओ!
इन चार शब्दो को सुनो, गुनो, समझो और
जीवन मे उतारो। ये शब्द नहीं – मत्र है।
पढो। बढो। चढो, गढो।'

ये शब्द ऐसे हैं – जैसे पहली कक्षा के, पर इन पर यदि विचार कर तो ये सफल एव सार्थक जीवन के शीर्षक हैं, बीज मत्र हैं –

पढो – मनुष्य की पढाई कभी खत्म नहीं होती। उसे बराबर पढना है, अपने को अजर अमर मानकर पढना है – अतिम सास तक!

बढो – बराबर प्रगति करना है। आग बढत चला। 'चरेवेति! चरेवेति' बस, चलते ही रहो, चलते ही रहो। यानी बढत चला। 'मजिल पे पहुच ता मजिल बढा दो'।

चढो – बढना सभ्यता है, पर ऊपर चढना – ऊचे उठना सस्कृति है। जीवन को उच्च, उदात्त एव समर्पण शील बनाना ऊपर की ओर यात्रा है।

गढो – जीवन में गढना है, सृजन करना है, कवल तोडना शैतान का काम है – पर रचनाधर्मिता यही मानवता है। बच्चो जैसे ये भोले शब्द – यदि जीवन मे उतरे तो जीवन हो जावे, धन्य और कृतकृत्य।

लडने की आचार सहिता

'तुम्हारी इच्छा लडने की है तो लडो, पर, लडने के नियम हैं, लडने की शर्तें हैं, है - मजूर?' एक स्त्री ने अपनी पडोसिन स कहा।

पडोसिन - 'मे शर्तें क्या हैं?'

स्त्री - 'पहली शर्त है, हम कहनी कहेगी, अनकहनी नहीं। इसका अर्थ यह है कि हम एक दूसरे की छिपी बाते नहीं कहेगी और न एसी जलीकटी सुनाएगी - जो मिलने मे हमेशा दरारे बने।'

पडोसिन - 'मजूर! दूसरी शर्त।'

स्त्री - 'दूसरी शर्त है - हम तीन कोनो में लडगी - एक कोना सदा खुला रखेगी - ताकि कभी मिलना भी हो सके!

तीसरी शर्त - हम दोनो लडेगी - परिवार के किसी को शामिल नहीं करगी।

चौथी शर्त - हम उसूल की बात कह कर झगडगी।

पाचवी शर्त - हम आखे लाल कर, गुस्से में भरकर, नहीं लडेगी।'

पता नहीं, ये दोनो कभी लडीं या नहीं - पर, ये शर्तें तो बिना जाने गीता की हैं। कृष्ण ने कहा - 'अर्जुन! लड, पर 'युध्यस्व विगत ज्वर ।' यानी उत्तेजना मे, बुखार मे गर्मा कर नहीं - शात होकर, युद्ध कर।

लडने की भी आचार सहिता है, एक मॉरल कोड है। हम लडे, झगडे - पर, ऐसे कि कभी मिलना हो तो कुछ भी कहीं भी, कभी भी बाधा न पडे।

दो विरोधी लहरे आई, टकराईं गरजीं और फिर मिल कर धारा बन बही। त्रिवेणी सगम के रूप मे, प्रयागराज हो जैसे।

चितन मनन

केकडो की गिराने वाली वृत्ति के शिकार – हम!

एक टोकरी है, जिसमें ककडे-ही-केंकडे भरे हैं। वह टोकरी खुली है बद नहीं है। उस पर ढक्कन नहीं, खुले मुह की है। पास ही एक आदमी निभय सोया है। खर्राटे की नींद ले रहा है।

एक भला आदमी उधर से निकला और चकित होकर यह दृश्य देखता रहा। उसने सहानुभूति में भरकर सोये हुए आदमी को जगाया और कहा – 'भले आदमी! कैसे बेखौफ सोये हो? केकडा से डरते नहीं।' उस सोये हुए आदमी ने उस भले इसान के प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा – 'ऐसी बात नहीं कि मुझे डर नहीं लगता। मैं तो मक्खी-मच्छर से भी बचने का प्रयास करता हू। पर, लगता है – आप केकडो को नहीं जानते। इनमे डर कैसा? ये केकडे अदर हैं तो अदर ही रहेगे। आप देखते नहीं – एक ककडा जब बाहर निकलने के लिए ऊपर चढता है तो दूसरा टाग खींच कर नीचे पटक देता है। सभी तत्पर हैं, सजग हैं – देखते हैं कोई ऊपर चढ न जावे। एक दूसरे की टाग खींच कर नीचे गिराने की बहादुरी म लगे हैं।'

इस उत्तर से वह भला आदमी आश्चर्य म पड गया और उसको लगा – आज हम सभी तो केकडे हैं – इनसे भी गए बीते। जब कोई आगे बढता है – हम उसे गिराने में, नीचा दिखाने में और उसकी छवि पर स्याही पोतने मे लगे हैं। यह दृश्य क्या हमारी राष्ट्र-सभाओ तक का नहीं है?'

हम आखिर मनुष्य हैं, हमारा विवक जगे, इस घुमाव-बिंदु पर हम कब तक खडे रहेगे। सहयोग का सुनहरा अध्याय जब भी लिखा जाएगा – तभी समझो हम 'हम' हैं।

लडने की आचार सहिता

'तुम्हारी इच्छा लडने की है तो लडो, पर, लडने के नियम हैं, लडने की शर्तें हैं, है - मजूर?' एक स्त्री ने अपनी पडोसिन स कहा।

पडोसिन - 'ये शर्तें क्या हैं?'

स्त्री - 'पहली शर्त है, हम कहनी कहेगी, अनकहनी नहीं। इसका अर्थ यह है कि हम एक दूसरे की छिपी बाते नहीं कहेगी और न एसी जलीकटी सुनाएगी - जो मिलने में हमेशा दरारे बनें।'

पडोसिन - 'मजूर! दूसरी शर्त।'

स्त्री - 'दूसरी शर्त है - हम तीन कोनो मे लडेगी - एक कोना सदा खुला रखगी - ताकि कभी मिलना भी हो सके!

तीसरी शर्त - हम दोनो लडेगी - परिवार के किसी को शामिल नहीं करेगी।

चौथी शर्त - हम उसूल की बात कह कर झगडेगी।

पाचवी शर्त - हम आखें लाल कर, गुस्से में भरकर, नहीं लडगी।'

पता नहीं ये दोनो कभी लडीं या नहीं - पर, ये शर्तें तो बिना जाने गीता की हैं। कृष्ण ने कहा - 'अर्जुन! लड, पर 'युध्यस्व विगत ज्वर।' यानी उत्तेजना मे, बुखार में गर्मा कर नहीं - शात होकर, युद्ध कर।

लडने की भी आचार सहिता है, एक मॉरल कोड है। हम लडे, झगड - पर, ऐसे कि कभी मिलना हो तो कुछ भी कहीं भी, कभी भी बाधा न पडे।

दो विरोधी लहरें आई, टकराई गरजीं और फिर मिल कर धारा बन बही। त्रिवेणी सगम के रूप मे, प्रयागराज हो जैसे!

केकडो की गिराने वाली वृत्ति के शिकार - हम!

एक टोकरी है, जिसम ककडे-ही-केकडे भरे हैं। वह टोकरी खुली है, बद नहीं है। उस पर ढक्कन नहीं, खुले मुह की है। पास ही एक आदमी निर्भय सोया है। खर्राटे की नींद ले रहा है।

एक भला आदमी उधर से निकला और चकित होकर यह दृश्य देखता रहा। उसने सहानुभूति मे भरकर सोये हुए आदमी को जगाया और कहा - 'भले आदमी! कैसे बेखौफ सोये हो? केकडो से डरते नहीं।' उस सोये हुए आदमी ने उस भले इसान के प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा - 'ऐसी बात नहीं कि मुझे डर नहीं लगता। मैं तो मक्खी-मच्छर से भी बचने का प्रयास करता हू। पर, लगता है - आप केकडो को नहीं जानते। इनसे डर कैसा? ये केकडे अदर हैं तो अदर ही रहेगे। आप दखते नहीं - एक केकडा जब बाहर निकलने के लिए ऊपर चढता है तो दूसरा टाग खींच कर नीचे पटक दता है। सभी तत्पर हैं, सजग हैं - देखते हैं, कोई ऊपर चढ न जावे। एक दूसरे की टाग खींच कर नीचे गिराने की बहादुरी मे लगे हैं।'

इस उत्तर से वह भला आदमी आश्चर्य मे पड गया ओर उसको लगा - आज हम सभी तो केकडे हैं - इनसे भी गए बीते! जब कोई आगे बढता है - हम उसे गिराने मे, नीचा दिखाने मे ओर उसकी छवि पर स्याही पोतने मे लगे हैं। यह दृश्य क्या हमारी राष्ट्र-सभाओ तक का नहीं है?'

हम आखिर मनुष्य हैं, हमारा विवेक जगे, इस घुमाव-बिदु पर हम कब तक खडे रहेगे! सहयोग का सुनहरा अध्याय जब भी लिखा जाएगा - तभी समझो हम 'हम' हैं!

मुस्कान की उजली रेखा

परेशानिया और दिक्कता की भीड को तितर बितर करने का एक अमोघ उपाय है, मुस्करा देना। चाहे कुछ भी हो, यदि हृदय मे आस्था का प्रकाश हो तो अधरा पर उजली मुस्कान या खिच जाती है, जैसे काले बादलो मे बिजली की रेखा।

जापान के यशस्वी कवि योन नागोची की यह प्रार्थना हमारा पाथेय बने –

'जब जीवन के कगारा पर हरियाली सूख गई हो, पक्षिया का कलरव मौन हो गया हो, सूरज के चेहरे पर ग्रहण की छाया गहरी होती जा रही हो और परखे हुए मित्र और आत्मीयजन काटा के मार्ग पर मुझे अकेला छोड कर चल दिए हो –

तो हे मेरे प्रभो! मुझ पर इतना अनुग्रह करना कि मेरे ओठा पर हास्य की एक उजली रेखा खिच जावे।'

हास्य की यह उजली रेखा ही जीवन को नए उत्साह से भरती है।

शायर का यह बया जीवन की हकीकत है –

हर मुसीबत का दिया इक तबस्सुम से जवाब।
इस तरह गर्दिशे दौरा को रुलाया मैने।

ये नये जयन्त

कथाए पुरानी, पर अर्थ सनातन और अद्यतन (अप टू डेट) इद्र स्वर्ग का राजा है। ऐश्वर्य से घिरा है। पद का मद है। अप्सराओं का नित नया नाच।

उसका एक लडका है - जयत। जयत लाड-प्यार में बिगडा सत्ता का भूखा बिगडैल, घमडी छोकरा है। वह चित्रकूट में जाकर भिडता है मर्यादा पुरुषोत्तम राम से। वह भगवती सीता के चरणो में काक बनकर चाच मारता है। भगवान् ने दड देने के लिए एक तिनके को बाण की तरह छोडा। वह कौआ जयत रक्षा के लिए इधर-उधर दौडा भटका, पर सब जगह से फटकार, दुत्कार।

अत में भगवान् राम की शरण मे आया। भगवान ने उसे 'काणा' एकाक्षी कर छोड दिया। मारा नहीं।

आज भी वह जयत जिदा है, जहा भी जिनको जरा धन मिला, पद मिला - उनके निरकुश लडके जयत का पार्ट अदा करते हैं।

इनको दड कौन दे? कानून, उसकी एक सीमा है। जनता-जाग्रत कम, सोई अधिक।

जयतों से छुट्टी मिलने के दो रास्ते हैं। या तो शासक अपने दुष्ट प्रियजन को साप से काटी हुई अगुली समझ कर काट कर फक दे या जन-जन जाग्रत व सजग बने।

किसी के काम आओ

कोरा भोगी क्या देगा? पर, कोरा योगी भी क्या देगा? कोरे ध्यानी, कोरे ज्ञानी - चाहे व्यक्ति स्तर से कितने ही बडे हो, समाज के स्तर पर उनका क्या मूल्य और महत्त्व है।

'उदधि बडाई कौन है, जगत पियासो जाय।'

सागर बहुत बडा है, पानी का खजाना है, पर - वहा प्यासा यदि चला जावे तो उसकी प्यास नहीं बुझेगी।

कोई कितना ही बडा हो, वह किसी के काम न आवे तो वह दो कौडी का।

एक छोटा सा पोखर है, कीचड भी है, थोडा सा पानी है। प्यासे परिंदे वहा जाते हैं, उनकी प्यास वहा बुझती है, वे अपनी प्यास बुझाकर पखो को फैलाकर - अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए - अपने घासले की ओर उड जाते हैं।

कविवर रहीम ने ऐसे 'पक जल' की (कीचड वाले जल की) महत्ता आकी है। वे गद्‌गद स्वरो म कहते है-'धन्य! धन्य है-'यह प्यास बुझाने वाला जल!'

धनि 'रहीम' जलपक को, लघु जिय पिवत अघाय।

छोटे-छोटे जीव जतु जहा तृप्ति का अनुभव कर अघा कर पानी पीते हैं- वह कीचड वाला थोडा सा जल भी धन्य है।

कोई चाहे कैसा भी हो, लोगो की दृष्टि मे तुच्छ हो, नगण्य हो- यदि वह किसी के काम आता है तो उसका जीवन सार्थक है, धन्य है। चाहे वह अखबारी सुर्खियो मे न चर्चित हो, न अर्चित हो।

ऊँचा लक्ष्य

गुजराती मे एक कहावत है –

'निसान चूक माफ
न माफ नीचु निसान।'

जीवन मे किसी ने ऊचा लक्ष्य बनाया, हो सकता है कि किन्हीं परिस्थितियो के कारण, वह लक्ष्य-वेध न कर सका। पर, ऐसा व्यक्ति क्षमा का अधिकारी है। कहना चाहिए कि वह प्रशसा का भी पात्र है।

पर, जिसने जीवन का निशान ही – लक्ष्य ही, छोटा बनाया है, वह क्षमा का अधिकारी नहीं। मान लो, वह सफल हो गया। सफल हो गया यानी उसने वैभव प्राप्त कर लिया। जायदाद बढा ली। बेटो-पोतो के लिए प्रभूत विलास सामग्री इकट्ठी कर ली। पर, वह किसी के काम नहीं आया तो समझो – एक पशु पैदा हुआ और 'आहार विहार, निद्रा-भय जैसी प्रवृत्तियो मे जीता रहा।'

दूसरा व्यक्ति महान् उद्देश्य के लिए समर्पित रहा – पर, सफलता प्राप्त न कर सका। महान् लक्ष्य बनाना ही जीवन की धन्यता है। सफल-विफल होना गौण है। सही है –

निसान चूक माफ।
न माफ नीचु निसान।

एक मशहूर शेर है –

गिरते है शह सवार ही मैदाने जग मे।
यह तिफ्ल क्या गिरेगा, जो घुटनो के बल चले।

अच्छे घुडसवार ही लडाई के मैदान मे गिरते हैं। वह शिशु क्या गिरेगा, जो घुटनो के बल चलता है।

संतुलन

कलियुग नहीं, कर युग है – यह
इस हाथ दे, उस हाथ ले।

– यह कलियुग नहीं है, यह कर (हाथ) का युग है। इस हाथ से दो और उस हाथ से पाओ।

असल में, हमारी जिन्दगी इसी 'दे' और 'ले' पर टिकी है। मानवीय सदर्भ में हमारी अवधारणा के देवता, राक्षस, पशु और मानव – इसी 'दे' और 'ले' के आधार पर बने हैं।

जो देता है, खूब देता है, जीवन भर देता रहता है – वह देवता है। राक्षस – वह है, जो लेता है, केवल लेने में विश्वास रखता है, यहा तक कि वह अपने आश्रितो को भी 'वस्तु' बनाकर भोग्य रूप मे परिणत कर देता है। उसके पोषण में भी दभ है, शोषण के लिए पोषण है। जैसे बलि पशु का पोषण – मूलत शोषण का ही एक छद्म रूप है। पशु वह है – जो देता है, लेता है – अज्ञानी रह कर। वह खाये जाता है, उसको भी खाये जाते हैं – वह यो ही मूल सवेदनाओ का शिकार है।

अब आता है – 'मानव', वह देता है – सकोच से, और लेता है – विनम्र हो कर। लेने देने में – वह अपने अधिकार और कर्तव्य के मध्य सतुलन रखता है।

यदि कोई मनुष्य – केवल अधिकार का शोर मचाता है तो वह शैतान है, राक्षस है। कोई देने में खुश है – वह देवता है। दोनों सदर्भों मे अज्ञानी है – वह पशु है। दोनो में सतुलित है – वह इसान है, सही ढग का आदमी है।

द्वंद्व - साधना

जीवन म द्वद्व आएगे। द्वद्व का अर्थ है - दो का जोडा। यह जोडा हमेशा विरोधो का होता है।

सुख-दु ख, मान-अपमान, शीत-उष्ण, शत्रु-मित्र, रात-दिन इनका जोडा है पर हैं एक-दूसरे के विरोधी। इन्हीं को द्वद्व कहते हैं। हमे इन्हीं द्वद्वा के बीच रहना पडता है। गीता का सदेश है - द्वद्वातीत बनो - यानी इस जोडो से परे चले जाओ। पर, कैसे?

यहीं पर हम सभल कर चलना ह। पहला सापान है - इनका सहा। कभी सुख है तो कभी दु ख - इनका सहन करना साखना हे।

दूसरा सापान है - दाना को स्वीकार करो। यह मानकर चला, फूल के साथ काटे भी है। यदि हम कमल के प्रेमी हैं तो कीचड भी हमे स्वीकारना पडेगा। पक म ही पकज खिलेगा।

अब तीसरा सापान है - न इनसे सटो, न इनसे हटो - दाना के बीच मे डटो।

हमे इन द्वद्वा को सम समझना है। कभी तटस्थ रहना है, कभी मध्यस्थ रहना है।

सार यह है कि सहो, स्वीकारो, सम रहो। इन द्वद्वा से पर होने के ये ही साधना-सापान हैं।

ककर से शकर

यूनान के महान् दार्शनिक सुकरात की आकृति को और उनके बाहरी शारीरिक लक्षणो को देखकर एक सामुद्रिक ने कहा – 'यह व्यक्ति मूढ, आलसी और विषयी दीखता है।'

सुनकर सुकरात शात रहे। थोडी देर बाद कहने लगे – 'ये बातें मेरे स्वभाव में जन्मजात थीं, पर मैंने दर्शन-शास्त्र के अध्ययन से अपने को सस्कारित किया है।'

सुकरात के इस कथन मे जीवन साधना का परम रहस्य छिपा है। हम भारतीय मानते हैं – जन्मजात हम असस्कारी होते हैं, पर गुरुगृह मे जाकर अध्ययन से नया जन्म पाते हैं।

श्रम, साधना, श्रद्धा और सकल्प से ककर-शकर बन जाता है, जीव शिवत्व प्राप्त करता है। यह कच्चा नाशवान जीवनघट अमृत-कलश बन जाता है।

आइए, गुणो को गुणित करे और इतिहास मे गणमान्य बने।

चुनाव लडे नही, चुनाव करे

हम चुनाव लडते हैं। चुनाव जनतत्र की बुनियाद है। इसमे जब लडना ही मूलभूत है तो यह लडने की आदत पड जाती है। गाव-गाव मे चुनाव की लडाई शुरू हो जाती है – कभी पचायत के नाम पर तो कभी विधानसभा और ससद के लिए। चुनाव लडना – यह अग्रेजी भाषा का अनुवाद है। यह अनुवाद हमारी परपरा के लिए विकृति बन कर छा गया है।

चुनाव की लडाई – जीवन की लडाई बन जाती है। फिर जीवन के सभी क्षेत्रो मे रात दिन युद्ध जैसा वातावरण बन जाता है। विरोध, प्रतिवाद, सघर्ष, एक दूसरे को पराजित करने के हथकडे – यही हमारी जीवन शैली बन जाती है।

आओ, हम चुनाव लडे नहीं – चुनाव करे। लोग खडे हैं – हम उन्हे देखे, समझे, उनके भावो को टटोले और उनका चुनाव करे। जैसे ही हम चुनाव करेगे, चुना हुआ आदमी जन चेतना को समझेगा और उसका सपूर्ण दायित्व और कर्तव्य जनोन्मुख हो जाएगा। वह अपने चुनाव के लिए गर्वित नहीं होगा, चुने जाने के रूप मे जन चेतना के प्रति कृतज्ञ होगा, सेवाभावी होकर विनम्र होगा।

चुनाव लडकर – हम जीतकर – उद्दण्ड, धृष्ट, निरकुश और स्वेच्छाचारी हुए हैं। चुनाव मे जनता से चुने जाने पर यानी चुनाव करने की शात सौम्य प्रक्रिया को समझ कर हम जिस भाषा का प्रयोग करेंगे – वह सहयोग की, सेवा की, विनम्रता और मेल मिलाप की होगी।

आइए, हम चुनाव न लडे और लडने न दे। हम चुनाव करने की नई प्रक्रिया शुरू करे। अब उम्मीदवार मौन खडे हैं – केवल मतदाता ही दानी बनकर नई भूमिका का निर्माण कर रहे हैं।

काटो भरा नया पथ

'ओरे।

जरूरत से ज्यादा सावधान रहने वाले पथिक।

एक बार रास्ता भूलकर भटकते फिरो।

एक बार-अपनी दोनो खुली आखो को व्याकुल आखो के पानी से अधी कर दो।'

– रविबाबू।

-यह गीत है-जरा लकीर से हटकर। कवि ईषत् व्यग्य कर रहा है-उन पर, जो अत्यधिक सतर्क होकर जीवन-पथ पर सभल-सभल कर, फूक-फूक कर-कदम रखते हैं। निरापद, निष्कटक, गाडी की तरह लीक-लीक पर चले हुए पथ के ही जो राहगीर हैं।

ऐसी सावधानी सुविधाजनक है, पर, इतिहास की धरोहर नहीं। इतिहास को उपलब्धि-खतरे का स्वागत करने वाला के बल पर मिली है-जा उजाड में काटा भरे जन अभुक्त (जहा कभी आदमी गया नहीं है) स्थानो पर लहू-लुहान कदमा से गए हैं। उनके पदचिह्नो पर-इतिहास आगे बढा है। चाहे उन्हें कुछ न मिला हो, पर, मानवता उन्हीं से समृद्ध है।

प्राप्त अमृत का निश्चित रसास्वादन करने वालों की अपेक्षा वे धन्य हैं-जो अप्राप्त की तलाश में भूले-भटके फिरे हैं। उनकी असफलताओ की नींवो पर ही सफलता के सौध (महल) खडे होते हैं।

चितन मनन

मित्र के लिए प्राण – वोट पर राष्ट्र का हक

'मै चुनाव मे खडा हो रहा हू। आप मेरे मित्र हैं। मैं आप से वोट मागने आया हू।'

बाबा-'तुम मित्र हो, या मेरी जाति के हो या मेरे कोई निजी हो, इससे वोट मागने का हक कैसे हुआ? तुम मेरे मित्र हो तो जरूरत पडने पर मेरे प्राण मागने आना, कभी इकार नहीं।'

'प्राण तो दूर, मुझे एक वोट अभी चाहिए।'

बाबा-'मैं सच कह रहा हू। प्राण मेरे हैं, तुम मेरे मित्र हो, सदा हाजिर हैं। लेकिन-'वोट' यह राष्ट्र की सपदा है, अत मेरे प्राणो से बढ कर हैं। अत वोट तो उसको मिलेगा-जो देश-सेवा म योग्यता और लगन से लगा है।'

इसी तरह के विचार सत विनोबा ने प्रकट किए थे। सच है-मतदाताओ की सजगता ही लोकतत्र की बुनियाद है। एक-एक मत जब तक मोह, आसक्ति, भय, लोभ, सकीर्ण भावना से ऊपर उठकर राष्ट्र-देवता का पूजा-पुष्प न बने-तब तक अयोग्य, क्षुद्र, सकीर्ण व्यक्ति विजेता बनेगे और चुनाव-छोटे-मोटे झगडो का रूपातरण बनता रहगा।

बाबा का यह कथन स्मरण रहे –

'आप मित्र हैं, प्राण हाजिर पर, वोट प्राणो से बढ कर है, इस पर तो योग्य सेवक का अधिकार है।'

दर्पण-गुरु बना

एक साधु के पास एक चेला था। वर्षों तक सेवा करता रहा, उपदेश सुनता रहा, पर 'जस का तस'। वही पुरानी बीती बाते दुहराता।

गुरु ने एक दिन कहा- जा तू बाहर- एक दर्पण साथ मे ले जा और यह देख- यह क्या-क्या करता है। यह दर्पण तेरा गुरु बनेगा, ऐसा मुझे लगता है। यही तुम्हे सीख देगा।

चेला दर्पण लेकर चल पडा। दर्पण मे देखा- एक औरत जा रही है, थोडी देर म गायब। पहले वाला अपना ही रूप- जिसके भीतर कुछ नहीं। इतने म एक आदमी आया- चेले ने दर्पण मे देखा- आदमी उसमे भर गया। थोडी देर मे वह आदमी भी गायब। कभी दर्पण मे कुत्ता आवे, कभी बिल्ली, कभी घोडा, कभी गधा, दर्पण मे सब गुजर रहे हैं- वहा टिकते नहीं। थोडी देर बाद दर्पण अपने स्वरूप मे।

रात को सपना आया दर्पण ने आदमी की भाषा म कहा- 'अरे मूर्ख। कहा भटकता है- अपने हृदय को दर्पण की तरह बना। सामने आया, थोडी देर रुका फिर अपना स्वरूप- वही-का-वही। ये घटनाए आती हैं, जाती हैं- इनको पकड कर मत रख।'

चेले को लगा- यह दर्पण उसे 'द्रष्टा' बनने को समझा रहा है। 'द्रष्टा' शब्द वह अपने गुरु से सुनता रहा- पर, समझा कुछ नहीं। आज 'दर्पण' ने स्वय बिना बोले समझा दिया। पता नहीं- कौन कब समझे, कैसे समझे। इसे समझने मे ही गुरु का गुरुत्व है।

इक सूरज नया बनाएं

कभी-कभी सूरज खो जाता है तो सारी जगह अधेरा हो जाता है। अधेरे तक तो कोई खतरा नहीं, बस, भीतर तक अधेरा न फैले। यदि भीतर अधेरा नहीं तो अपने को एक छोटी सी किरण बनाकर यात्रा की जा सकती है और सारा जीवन जगमगा सकता है।

पर, जब हम निराश होकर गए हुए सूरज को दिन भर याद करते हैं, उनके यश के मदिर खडे करते हैं और अपनी तुच्छता को बढा-चढाकर बताने और रोने मे होड लगा लेते हैं- तब कोई शायर, हमें इस अधेरे से उबारने के लिए कुछ गुनगुनाता है-

जब से किसी ने
कर ली है सूरज की चोरी
आओ
चल कर सूरज ढूढे
और न मिले तो
किरन किरन फिर जमा करे हम
और इक सूरज नया बनाए

-जावेद अख्तर

जो समाज इस तरह 'किरन किरन' जमा कर नया सूरज बनाता रहेगा- वह निरतर प्रगति पथ पर बढता प्राणवत रहेगा।

वेदात का सिह गर्जन है-

'कहा ढूढता है- तू सूरज को
तू ही वह भास्वर भास्कर है।'

दर्पण-

एक साधु के पास एक चे
उपदेश सुनता रहा, पर 'जस का त

गुरु ने एक दिन कहा- जा
और यह देख- यह क्या-क्या करता
मुझे लगता है। यही तुम्हे सीख दे

चेला दर्पण लेकर चल पडा।
है, थोडी देर मे गायब। पहले वाला
नहीं। इतने मे एक आदमी आया-
भर गया। थोडी देर मे वह आदमी
कभी बिल्ली, कभी घोडा, कभी ग
टिकते नहीं। थाडी देर बाद दर्पण

रात को सपना आया दर्पण
मूर्ख! कहा भटकता है- अपने हृद
आया, थोडी देर रुका, फिर अपना
आती हैं, जाती हैं- इनको पकड

चेले को लगा- यह दर्पण
'द्रष्टा' शब्द वह अपने गुरु से सुनता
'दर्पण' ने स्वय बिना बोले समझा
कैसे समझे! इसे समझने मे ही गुरु

एक दुष्ट कम हो सकता है

संसार काटो की बाडी। यहा उलझ-उलझ कर मरो। दुनिया लगती है - जैसे दुष्टों से भरी है। चारो ओर धूर्त, दुष्ट, धोखेबाज।

इन शब्दो को हम रातदिन सुनते हैं। यह कथन थोडा सत्य भी है, थोडा झूठ भी है। यह दुनिया है - दो रगी। कभी काला-ज्यादा और कभी ज्यादा सफेद।

एक महात्मा इन आवाजो को सुनकर जरा रुके और गरज कर बोले -

'अरे। दुनिया के लोगो। आओ, मेरे पास और ध्यान से सुनो।'

लोग रुक गए। सुनने को चौकन्ने (चार कान वाले) हो गए।

'मैं पहले 'हा-मे-हा' मिलाकर बात करना पसद करूगा। दुनिया मे दुष्ट हैं, यह सच। इन दुष्टो को कम किया जा सकता है। हरेक आदमी मे इतनी ताकत है कि वह एक दुष्ट आदमी को निश्चित रूप से कम कर सकता है। वह दुष्ट चाहे शैतान हो, चाहे रावण हो, चाहे कस हो।'

लोग चकित होकर अपनी भीतरी ताकतें सभाल रहे थे।

सत ने कहा - 'लो, साफ साफ सुनो। दुनिया की बात छोडो। तुम कोशिश करो और अपने को भला बनाओ। यदि तुम अपने को 'भला मानुष' बना लोगे तो दुनिया मे कम-से-कम एक दुष्ट तो कम हुआ।'

यह पहला मौका था - जब सवाल सीधा रखा गया और उत्तर भी सही दिशा मे था। पर, हमारी आदत है - भीतर के 'दुष्ट' को बचाना और बाहर छाया को पीटना।

जब तक यह चालू है, दुष्ट भी जिदा है। एक-न-एक दिन तो हमें चोर को न मारकर चोर की मा को मारना है। यह सत का मार्ग है। ना, यही मार्ग है - सही सीधा मार्ग। सीधा मार्ग-हमारे लिए टेढी खीर बन रहा है।

मैत्री का चरम आदर्श

चैतन्य महाप्रभु उन दिनो नवद्वीप मे थे। निमाई नाम से प्रसिद्ध थे, एक विद्वान् के रूप मे। सोलह वर्ष की वय थी, व्याकरण मे पारगत हो- न्याय शास्त्र का अध्ययन कर रहे थे। न्याय के विषय मे एक ग्रथ भी लिख रहे थे।

एक दिन वे अपने मित्र श्री रघुनाथ के साथ नौका मे बैठकर अपने न्याय के ग्रथ को सुना रहे थे। निमाई ने पढते-पढते बीच मे अपना सर उठाया तो देखा- रघुनाथ की आखो से आसू बह रहे हैं। निमाई- 'भैया! तुम रो क्यो रहे हो?'

रघुनाथ- 'मैंने न्याय पर 'दीधिति' नामक ग्रथ लिखा है, पर, वह तुम्हारी इस कृति के सामने नगण्य है। मेरे ग्रथ को कोई पूछेगा भी नहीं।' इसे सुनते ही निमाई ने अपने ग्रथ के पन्ने पन्ने को गगा मे बहा दिया और कहा- 'बहुत बुरी है, वह पुस्तक जिससे किसी मित्र को कष्ट हो।' यह देखकर प रघुनाथ दो क्षण एक शब्द भी न कह पाए। वे निमाई के पैरो पर गिर पडे, पर निमाई ने उन्हे अपने गले से लगा लिया।

भागीरथी की वे लहरे आज भी इस मित्र प्रेम की, निमाई के त्याग की, आदर्श मैत्री की, कथा सुनाते सुनाते थमती नहीं हैं।

विद्या ददाति विनयम्

विश्व विख्यात वैज्ञानिक न्यूटन – जिन्होने पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का सिद्धात प्रतिपादित किया है, उनको एक दिन एक महिला मिली, उसने न्यूटन की खूब प्रशसा की और विद्या बुद्धि की मुक्त कठ से सराहा।

न्यूटन सुनकर स्तब्ध रह गए और फिर धीरज धर कर, विनम्रता से कहने लगे – 'आप कहा की, किसकी, कैसी बाते कर रही हैं –

मैं तो उस भोले बच्चे की तरह हू जो सत्य के विशाल सागर के किनारे बैठा हुआ केवल ककडो को ही चुनता रहा है।'

इस कथन मे विनम्रता है, इसी से ज्ञान की शोभा है। भर्तृहरि का यह कथन हमे अपनी उपलब्धि पर गर्वित होने पर सदा चेतावनी देता रहता है –

'मैं जब कुछ नहीं जानता था, जरा सा जानता था तो मदोन्मत्त हाथी की तरह घमड मे झूमता था, पर, बुधजन के ससर्ग से जब जान पाया हू कि मैं तो महामूर्ख हू – इससे मेरा सारा घमड बुखार की तरह उतर गया है।'

यह विनम्रता – विद्या का श्रेष्ठ अवदान है, वरदान है। 'विद्या ददादि विनयम्।' यही भावना हमारे प्रगति पथ को सदा प्रशस्त रखती है और कहती है – 'चरैवेति' – बस, चलते ही रहो। बढते ही रहो।

युवक कौन?

युवक कौन है, इसे हम यदि सही समझने की कोशिश करे - तो कहना पडेगा, जिसकी आखो में सपने हो। आखें कमल की तरह हैं, मछली की तरह हैं, मृग की तरह हैं - श्वेत श्याम रतनार हैं - ये नरगिस की तरह हैं - इनके मूल मे हमारी सौंदर्योपासक भावनाए हैं - पर, इन उपमानो के बल पर इतिहास आगे नहीं बढता।

युवक की आखो मे सपने होते हैं - कुछ कर गुजरने की उमगे। उत्साह की मदिरा से लबालब भरी आखें! जिन आखों मे कभी निराशा की धुध न हो, कठिन विपत्तियों में भी जिन आखो में रोशनी झिलमिलाती हो - तब कहना पडेगा ये आखे हैं - तरुण की तरुणाई के तेज से दीप्त! बुझती, निराश, उदास आखें - आखें नहीं, मोर की पाखो के चदोवे वाली नाम की आखें हैं।

'कदुक इव ब्रह्माड उठाऊ' मैं सारे ब्रह्माड को गेद की तरह उठा सकता हू।' यह कथन केवल शेषावतार वीर किशोर लक्ष्मण का गर्व नहीं - यह उद्दीप्त यौवन की वाणी है - उस समय आखों में अगारे धधकते हैं, सूर्य का तेज दीपता है। इसी का नाम युवक है।

मनुष्य की एक सीमा

सृष्टि विचित्रताओं से भरी है। इसका रहस्य कुछ ज्ञात है और बहुत कुछ अज्ञात है। परमहंस कहा करते थे – 'भगवान् दो बार हंसते हैं – एक बार जब दो भाई हाथ में रस्सी लेकर जमीन को बांटते हैं – इधर तेरा, उधर मेरा तथा दूसरी बार जब कोई वैद्य या डाक्टर यह कहता है कि मैं इस रोग को दूर कर दूंगा।'

देखने में आता है – जब भयंकर वर्षा होती है तो बड़े-बड़े महल चूने लगते हैं। भूपति भाग खड़े होते हैं। वैद्य की नारी विधवा हो जाती है और नामी तैराक डूब जाते हैं –

घण मेहा मिंदर चूवै, भूपत ही भाजन्त।
बैदा की ही राड हुवै, तैरू डूब मरत॥

यानी मनुष्य की एक सीमा है – शक्ति की, जानकारी और कुशलता की। उसे विनम्र रहना है और बराबर सीखना है। गर्व किसी का नहीं चलता।

सोते हुए राष्ट्र की नियति

कितने ही साधु बने समाज को लूटते हैं, पता लगाना ही कठिन। एक साधु जगल म रहते थे। पास ही खत था। साधु रात को खडाऊ पहन कर खेत म जाते और खेत मे से बाजरी के सिट्टे और मतीरे आदि तोडकर ले जात। बाबा ने खडाऊ ऐसी बनाई थी कि उसके जो चिह्न जमीन पर पडते, उनको देखकर लगता कोई गधा यहा आया है।

सुबह जब खत मे पडे पद चिह्न को किसान देखता तो लगता- कोई गधा आता है और खेत मे नुकसान कर जाता है।

एक रात किसान छिपकर बैठ गया। अपन निश्चित समय पर बाबाजी आए और सिट्ट लेकर 'खट् खट्' की आवाज करते खेत से निकले। बाबा को पकड लिया। किसान ने इतना ही कहा-

गटमण गटमण माला फेरै, तिलक करे सिधा रा।
ऊपर से बाबोजी दीखै, नीचे खोज गधा रा।

बाबाजी तो कितना नुकमान कर सकते थे, नाम मात्र को। पर, जब बाड खत को खाने लगती है - तो ऐसे लाग लाखो, करोडो को नहीं अरबो को हजम कर जाते हैं। पचा जाते हैं और डकार तक नहीं लते। सोते हुए समाज या राष्ट्र की यही नियति है।

नींद के सच्चे स्थान

प्रश्न है– 'नींद लेना अच्छा है या जागना।' इसका उत्तर एक उत्तर नहीं। अलग–अलग प्रसग और अलग–अलग सदर्भ मे अलग–अलग उत्तर है। दुष्ट है, दुष्ट मत्री है, दुष्ट नेता है, दुष्ट अधिकारी है – वह सोया पडा रहे – उतना ही अच्छा। कुभकर्ण की नींद भी ले ले तो दुनिया का भला ही हो।

पर, जो सत हैं, समाज के सच्चे सेवक हैं, परोपकारी हितैषी हैं, विद्यार्थी हैं, साधुजन हैं – वे जितना जागे, उतना ही मगल।

योगी भर्तृहरि ने कहा– 'प्यारी नींद। तू मेरे पास क्यो आ रही है। हम तो यहा पत्थर पर सोने वाले हैं, पगली। यहा मत आ। तू वहा जा– 'जहा राम की भक्ति नहीं। तू राजद्वारे जा – जहा रसिक भोगी राजा है। तू वहा जा– जहा लोग सभा मे बैठकर भी झूठ बोलते हैं और पराई निदा करते हैं। नींद के लिए विलासियो के यहा जा। ये जितने सोवे, उतने ही शुभ।'

कभी–कभी परिषदो के सभ्य जब असभ्य बन शोर मचाते छवि भजन करते 'दूरदर्शन' से निकट दिखते हैं तो मन चाहता है – ये सो जावे, सभी सो जावे – छ महीने ही नहीं – पूरे पाच साल तो देश, समाज और व्यक्ति का कितना हित हो।'

'वा घर जाइयो नींदड़ली।
बैठ सभा मे मिथ्या बोले, निदा करे पराई।'

इसलिए योगी कहते हैं–

'हमारा पीछा छोड बावरी। हम हैं रमता जोगी।' कितना अच्छा हो, नींद इसे सुने।

भीतर के सोये बुद्ध को पुकारे

हमारे यहा तीन का बडा महत्व है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश, आदि, मध्य और अत, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, सृष्टि स्थिति, सहार। वचन भी जब कोई देता है तो त्रिवाचा देने का रिवाज है–

यानी मैं इसका करूगा नहीं, कराऊगा नहीं और करते हुए का अनुमोदन नहीं करूगा– यह बात मनसा, वाचा, कर्मणा है। इस त्रिवाचा का महत्त्व है। कारण कि हम बहुत बार किसी गलत काम को खुद नहीं करते, पर करवाते हैं। 'भुस मे आग लगाय जमालो दूर खडी', भोले भले लोगो को बुद्धिमान लोग बातो मे उलझा कर उनकी अक्ल निकाल लेते हैं और उन्हे आगे करके स्वय दूर खडे तटस्थता का ढोंग रचते हैं।

इसी प्रसग मे 'त्रिशरणता' पर विचार करते हैं तो नए सदर्भ मे हम नया सोच करना पडता है।

एक समय हम कहते थे–
बुद्ध शरण गच्छामि
धर्मं शरण गच्छामि
सघ शरण गच्छामि।

आज इस तिपाये की दो टागे तो टूट गई हैं और एक टाग गायब है। पहली हमारी तलाश बुद्ध की है। कहीं जावे किसी दल में शामिल हो, किसी के सदस्य बन-देख समझे, विचार-क्या वहा कोई एक आध बुद्ध है। यदि है तो वह सस्था प्रवेश्य है।

'धर्मं शरण गच्छामि' इस पर हमारा विश्वास उठ गया। क्योकि सारी छोटी मोटी सस्थाए अपने उद्देश्यो म लुभावती बडी बडी बाते रखती हैं– जैसे शैतान अपने समर्थन मे बाइबिल का उद्धरण दे रहा हो। 'सघ' शरणता कैसी। किसी सघ का भरोसा नहीं– नित नए सघ बने और बिखरे– 'सघ' तो भीड बन गए हैं।

यदि बुद्ध न मिले तो स्वय अपने भीतर के सोये बुद्ध को पुकारे, टेरे– यही विकल्पहीन पथ शेष है।

चितन मनन

अपनो भवन बुहार

एक बुढिया बीमार थी। भरापूरा परिवार और धन की भी बहुतायत। डाक्टर, हकीम, तात्रिक, वैद्य, झाडफूक वाले आ जुटे। इलाज का प्रबध होने लगा। कभी कडवी दवाइयो की बातें, कभी इजेक्शन लिए सूइयो की तैयारिया। बुढिया बेहोश प्राय इतने में एक नए जवान वैद्य ने कहा- 'मेरा निवेदन है कि-माजी नै ताता ताता गर्मागर्म लपरिया (हलवा) देओ।' वैद्य की बात बुढिया के कानो में अमृत-सी पडी। आख खोलकर बोली- 'सब को रहने दो, कह दो अपने घर जावें, यह वैद्य जो कहता है, इसकी बात सुनो।' बुढिया को हलवा दिया गया और वह एक बार ठीक हो गई। वैद्य की गाडी चल पडी।

कभी-कभी सब की बातें सुनकर हम अपने को अधीर कर देते हैं। बहुत-सी बाते हमे रुचती नहीं हैं-क्योंकि इनके फेर मे आ चुके हैं। मन सुनते-सुनते ऊब जाता है। हम दिन भर अपने घरो मे दुनिया भर की बाते करते हैं, जिनमें सार नहीं, दूसरो की निदाभरी, घृणाभरी-बाते। लगता है- हम शहर भर की गदगी घर मे ले आए हैं। ऐसे समय मे क्या ही अच्छा हो-सप्ताह में न सही, महीने में कम से कम एक बार सत 'नारायण' की बात गाठ बाध लें, जरा इसका स्वाद लेकर तो देखें,

तेरे भावे जो करे, भलो बुरो ससार।
'नारायण' तू बैठ कै अपनो भवन बुहार।

-तुम्हें करना क्या है, तुम्हारी बला से-कोई कुछ भी भलाबुरा करे। तू जरा शात होकर, बैठ और अपने घर को बुहार, अपने दिल को पाक साफ कर।

एक बार भी हमें इसके दिव्य रस का स्वाद आ जावे तो फिर- 'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावे?' कौन ऐसा नासमझ अनाडी होगा, जो घर आई कामधेनु को छोडकर बकरी को दुहना पसद करेगा।

भूलने और याद रखने मे - विवेक

क्या याद रखे और भूल जाए-इसी मे मानव जाति का भविष्य निर्भर है। हम प्राय अपने गुणो को याद रखते हैं और दूसरो के दोषो को। जरा उलट कर देखे।

अपने किए हुए सुकृत को भूलकर जरा दुनिया की ओर देखे। भगवान् राम का रामत्व इसी मे था-वे जब अपनी प्रशसा, गुणो का गान सुनते थे-जरा दब जाते थे, कहते थे-बस! पर, दूसर ने यदि एक बार भी प्रणाम किया श्रद्धा से झुका-उसकी प्रशसा मे अपने को मुग्ध करते थे।

निज करुना-करतूति भगत पर चपत, चलत चरचाउ।
सकृत प्रणाम-प्रनत-जन बरनत, सुनत, कहत, फिरि गाउ।

'आपने अपने भक्तो पर जो-जो अनुग्रह और उपकार किए हैं, उनकी प्रसगवश जब-जब आपके सामने चर्चा चली तब-तब आपने उसे वहीं टोक दिया पर जिसने एक बार भी आपको प्रणाम कर दिया, उसकी महिमा का बखान करते आप कभी थके नहीं, औरो से भी उसका वर्णन सुनते रहे।'

शायर खलीक अहमद 'खलीक' ने इसी बात को यो फरमाया है-

बैठकर मैकदे में ऐ हमदम हाथ मे जाम जब उठाता हू
सिर्फ एहसान याद रहते हैं जुल्म दुनिया के भूल जाता हू।

ऐसी विस्मृति और ऐसी स्मृति दोनों वरदान हैं।

गीत नहीं – गीता

गहनो के प्रति बेहद दौड है। सासू ने पूछा–'गहनो को पहन कर दिखाओ।' उस समय नव वधू ने जो उत्तर दिया, वह उत्तर नहीं है, भारत के सुखी गृह-जीवन की कुजी है। यह गीत नहीं है, जीवन की गीता है।

सासूजी पुछियो ए बहू, थारो
गहणो म्हाने पहर दिखाय।

सासू ने पूछा, हे बहू! मुझे गहना पहन के दिखाओ।

सासू, गहणे ने काई पुछो,
गहणो ओ म्हारो सौ परवार।

सासूजी, आप गहनो का क्या पूछती हैं, गहना तो मेरा सारा परिवार है।

'मेरे ससुर, जो गढ के राजवी हैं, वे रत्न भडार हैं। मेरे जेठजी बाके बाजूबद हैं। मेरी जेठानी बाजूबद की झूमक है। मेरा देवर हाथी दात का चूडा है-देवरानी है चूडे पर की लाल लाल मजीठ। ननद कुसुमी रग की चोली है और ननदोई गजमुक्ता का हार। मेरे पति मेरे सिर के सेहरे हैं और मैं अपने प्रियतम की सेज का शृगार हू।'

सासू गद्‌गद्, 'धन्य है, तू ने मेरे परिवार को दुलराया है। तुम पर बलिहारी।'

बहू–'हे सासू आपकी कोख पर बलिहारी। आपने भी तो भीम, अर्जुन से पुत्रो को जन्म दिया है।'

राजस्थान के एक गीत की यह केवल नीरस अवतारणा है। 'बहू रिमझिम महला सू ऊतरी। आतो कर सोला सिणगार।' यह गीत सूखे मारवाड का 'मधुवन मे आम बौराने का' गीत है। मधुवन को ए आमो मोरिये-ओ तो पसस्यो रे सारी मारवाड।

काश-यह गीत जीवन में उतरता रहे।

बस - एक क्षण!

जो खिलाडी खेल को कठिन मानता है, वह खिलाडी नहीं। जो कारीगर कहता है, यह काम कठिन है, वह कारीगर नहीं-अनाडी है। जो कहता है कि ये आत्म-दर्शन की बाते हैं, यह तो अमृत है, पाना और पीना कठिन है। तो फिर मनुष्य होने का मतलब ही क्या? क्या आत्मज्ञान की बातें पशु-पक्षी करेंगे।

सतो का सदेश है-'तू लगा रह। थक मत। लगा रह। माप तौल मत कर। पीछे कितना समय काट कर आया है, इसका हिसाब मत लगा। आगे की ओर देख। मजिल तुम्हे पुकारती है। जितना चल दिया, वह तेरा है। दूरी कुछ नहीं-जहा सकल्प जगा दूरी सिमट कर दूर हो गई। कृत सकल्प के लिए लक्ष्यबेध सिद्ध है।

अष्टावक्र न जनक से कहा-'तू ब्रह्म है।' जनक-'अपने को ब्रह्म समझने की साधना मे कितना समय लगेगा।' अष्टावक्र-'समय? कैसा समय? एक क्षण। अभी आ, घोडे की रकाब मे पैर डालते-डालते तुझे आत्म साक्षात्कार कराता हू।'

जनक जैसे सोते से जाग गए। वाणी की इस तीव्रता, निर्भ्रान्तता और ओजस्विता ने जनक के मोह को चकनाचूर कर दिया। 'बाहर घाव न लागइ, भीतर चकनाचूर।' सबद के बाण का ऐसा प्रभाव पडा-एक ही क्षण में जनक 'विदेह' बन गए-आत्मा का नूर चेहरे पर झलक उठा और रोम-रोम से झकार उठी-'अहम् ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हू। 'शुद्ध, बुद्ध, चेतन, ब्रह्म। केवल ब्रह्म!'

वेग रहे, पर उद्वेग नहीं

हम दौडते दौडते थक जाते हैं – फिर भी दौडते हैं। होना यह चाहिये, नए आवे, वे दौडें। कहीं–न–कहीं श्रम के बाद विश्राम का समय आता है। पर, हम जीवन मे विश्राम को महत्व नहीं देते। कहीं–न–कहीं हमे रुकना भी है, आखिर यह महत्त्वाकाक्षा की अविश्रान्त दौड कब तक।

सासो के आने–जाने के मध्य जरा सा ठहराव है, श्रम परिहार का उपाय है। यदि सास तेजी से चलने लगे, तो यह सास उठने की बीमारी है, यह कोई पुरुपार्थ नहीं है।

श्रम न करना तमोगुण है, दिन भर रात भर लोभ व अहकार मे भरकर बेतहाशा भागते रहना रजोगुण हैं, जिसका फल अशान्ति, और परेशानिया हैं। एक सत्त्व गुण है, जिसमे श्रम है, विश्राम है, उत्साह है, सुख है, शान्ति है और कर्म–फल की पूर्णता है। उत्तेजना उतावलापन और अकुलाहट–उत्साह मे कैसे बदले – यही युग की माग है। वेग रहे, उद्वेग जावे।

एक उपाय है, कहीं–न–कहीं हम यह भी कहना सीखे – 'इतरा दे किरतार, फेर काई चावणा।' हे कर्त्ता। आप इतना, बस, इतना दे दीजिए। फिर कुछ नहीं कहूगा, कुछ नहीं चाहूगा।' कभी तो यह सतोप का स्वर निकलना चाहिए। अपने सन्दर्भ मे चाहे भिन्न रूप से। उस किसान की छोटी सी आकाक्षा, चाहे छोटी लगे, पर, है – मोहक और मधुर

नईं मूज री खाट, न चूवै टापरी,
भैसड़ल्या दो चार 'क, दूजै बापड़ी।
बाजर हदा रोट, दही मे ओलणा,
इतरा दे किरतार, फेर नहीं बोलणा।

मतलब खूब चाहे, मागे – पर, कहीं तो कहें – बस। यही शाति का उपाय है।

मातृशक्ति को प्रणाम

महर्षि दयानद सरस्वती सन् १८९१ मे वीरभूमि चित्तौड पधारे। एक दिन राज कर्मचारियो के साथ भ्रमण कर रहे थे। मार्ग मे एक मदिर के पास छोटे-छोटे बालक खेल रहे थे।

उनमे एक पाच साल की बालिका थी। स्वामीजी ने बालिका को देखकर शीश झुका दिया। साथ वालो ने इस मर्म को न समझकर इधर-उधर देखा कि स्वामीजी किसे इतना आदर दे रहे हैं। यह शीश किसी नरेश के सामने नहीं झुकता - आज क्यो झुका, किसके सामने झुका।

स्वामीजी ने उनके आश्चर्य का कारण समझकर गभीरता से उत्तर दिया - 'देखते नहीं हो, यह मातृशक्ति सामने खडी है।'

लगता है, वीर माता, वीर वधू और वीर बहनो की इस धरती को देखकर - बालिका के माध्यम से स्वामीजी ने वीर प्रसविनी धरित्री के इतिहास को ही प्रणति निवेदन किया है।

नासमझी का प्रदर्शन

किसी राजा के यहा महफिल जमी। नामी गायक आए। गाना खत्म होन पर किसी श्रोता ने अपनी जानकारी का सही परिचय देते हुए कहा-'कान्हडा' बहुत अच्छा गाया गया। राजा यो तो सगीत के मामले मे कोरा था, पर, वह यह भी चाहता था कि लाग उसकी कद्रदानी की भी तारीफ कर। राजा ने जब सुना 'कान्हडा' का नाम तो समझ गया-इन राग रागिनियो का सबध शरीर के अगो से ही होता है।

अत जैसे ही गाना बद हुआ-राजा ने दाद देते हुए कहा-'क्या बढिया गाया-आखडा।' लाग चुप। गायक भौचक्के। इसे अनसुनी कर गायको ने फिर झूम कर नया राग अलापा। जैसे ही गाना सम पर आया राजा जी हर्षोन्मत्त हो वाह-वाही के लहजे म बोल पड-'इस बार 'नाकडा' खूब जमा।' श्रोता और गायक मन म हसे, पर बाहर खामोश। पर्दे के पीछे रानी बैठी थी, वह सगीत मर्मज्ञा थी-उसने राजा साहब की इस नासमझी का अनुभव किया और अपनी दासी को भेजकर कहलाया कि आप सुनते रहे, बोलें नहीं। इन राग-रागिनियो का शरीर के कान, आख या नाक जैस अगो से कोई लेना-दना नहीं।'

राजाजी ने दासी से कहा-'ज तू आती थोडी मोडी। तो मैं गुवा तो नू तोडी॥

-यदि तू देरी से आती तो मैं इनका पीछा नहीं छोडता, नखो तक गवाता।

लोग भी अजीब हैं, अपनी अनभिज्ञता का-ढोल बाल कर रात-दिन सोत्साह प्रदर्शन मचा पर करते हैं। लोग सुनते हैं-क्योंकि वक्ता के पास धन है, पद है या है हानि पहुचाने की ताकत।

यद्यपि पुराने नीतिकारो की सलाह थी-'मौन मूर्खों का भूषण है।'

अधकचरे कुपढ - खतरनाक

लाखो आदमी अपढ होते हैं, निरक्षर होते हैं- पर, होते हैं, सस्कारी। थोडे लोग- सुपढ होते हैं। अच्छे होते हैं, अच्छी तरह पढे हुए होते हैं, व्यवहार मे नम्र, विनीत, जिज्ञासु और ज्ञान का सदा सदुपयोग करने वाले। 'विद्या ददाति विनयम्' के साकार रूप।

पर, बहुत बडी सख्या होती है- कुपढो की। अपढ- भोले हैं, निरीह हैं, पर, कुपढ- खतरनाक। अपनी पढाई के नशे मे धुत! थोडा सा जानते हैं, पर समझते हैं, उन्हे सब आता है। ज्ञान का दरवाजा बद। ऐसे ही लोगा के लिए कहा गया होगा- 'नीम हकीम खतरे जा'। अधकचरा हकीम- जान के लिए खतरा। यो तो सभी चाहे जितना जानें- सर्वज्ञ तो नहीं। सवाल- सर्वज्ञता का नहीं। सवाल है- हम जितना जाने, उसकी सीमा जानते रहे तो फिर खतरा नहीं। न अपने को और न समाज को।

इसीलिए भर्तृहरि जी ने कहा- अज्ञ सुख से समझाया जा सकता है, विज्ञ को इशारे से ही समझाया जा सकता है, पर, ज्ञान-लव-दुर्विदग्धो को- यानी ज्ञान का टुकडा पाकर अपने को पूरा ज्ञानी समझने वाले अधकचरो को, ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते।

सुख सो समझत मूढ जन, अति सुख विदुष रिझाय।
अर्धदग्ध मतिमद को, विधि न सके समुझाय।

हम जाने, जानते ही रहे- सदा विद्यार्थी बन कर। अपने ज्ञान के साथ अपने अज्ञान का ज्ञान ही जीवन का सर्वोत्तम ज्ञान है।

जीवन – एक अगारा

राजा को कहीं से अनाज का बडा दाना मिल गया, वह होगा-पाव भर का, पर आकृति और बनावट मे गेहू जैसा। आखिर-यह है क्या?

राजा ने आदेश दिया, किसी बूढे को खोजो और इसके बारे मे पता लगाओ। राजा के प्यादे चारो ओर दौडकर एक बूढे को कधे पर चढाकर लाए। बूढे ने कहा– 'यह गेहू है, इससे अधिक मेरे पिताजी बता सकगे।' प्यादे गए और बूढे के बाप को ले आए। इस बार जिसको लाए, उसकी आखो मे रोशनी थी, पैरो मे ताकत, सिर्फ सहारा देना पडा।

बूढे का बाप– 'हा, हा, यह गेहू है–बचपन मे मैंने इसे खूब खाया था, पर, इसके बारे मे मैं इससे अधिक और कुछ नहीं जानता। मेरे पिताजी अभी हैं, वे पूरा बता सकेगे।

प्यादे फिर दौडे। इस बार बूढे के बाप के भी बाप को पकड कर लाए, उसकी आखो म पूरी रोशनी, कधो मे उभार, पैरो मे धमक, किसी सहारे कि बिना सीधा तना हुआ, धीरे-धीरे चल रहा था।

उसने राजा से कहा– 'हा, जी, यह गेहू है, हमने बोया है, काटा है, गाहा है, खाया है।'

राजा ने पूछा– 'तब क्या भाव बिकता था?'

हसकर बूढे के दादा ने कहा– 'बिकना-बिकाना कहा, जितना चाहिए मिल जाता था और चीजा के बदले सारी चीजे मिलती थीं।'

यह कहानी है, पर कहानी से भी सच्ची। जीवन एक पूजी है, इसे धीरज से, प्रेम से, शाति से, श्रम से, निश्चितता से जिया जाता है। पर, हम दौडते हैं–घर मे दौडते हैं, शयन घर से रसोई घर मे भी दौडकर जाते हैं।

जीवन को कागज मत बनाओ, जो दियासलाई से तुरत जलकर भभक कर बुझ जाता है। जीवन एक अगारा है जिसने धीरे-धीरे आग पकडी है और फिर देर तक धधकता फूल-सा हसता रहता है।

दारू (शराब) के बहते दरिया मे

एक गाव मे छूत की बीमारी के रूप में खुलखुलिया (कुक्कुर खासी) का बच्चो में प्रकोप बढ गया। एक मा को कहा गया कि यदि इसे दवा के रूप से थोडी सी 'दारू' (शराब) दी जावे तो यह बीमारी मिट सकती है। पर, गाव में दारू कहा, केवल ठाकुर साहब के गढ मे ही सभावना थी। वह हिम्मत कर के ठाकुर साहब के पास गई और उसने बच्चे के लिये थोडी सी 'दारू' मागी। ठाकुर साहब ने अपने नौकर से कह कर दारू दिलवा दी। मा ने पूछा- 'ठाकुर साहब! मेरे बेटे की खासी इस दारू से चली जायगी क्या?' ठाकुर ने हस कर, दर्द भरे स्वर में कहा- 'बावली! इस दारू से हमारे तो राज तक चले गए हैं, खासी की बात करती है।'

पता नहीं, वह ग्राम- बाला इस से क्या अर्थ समझ पाई? पर, ठाकुर साहब के कथन मे एक लबा दर्दनाक इतिहास छिपा है।

बडे बडे साम्राज्यो मे जब शराब का दरिया बहा है तो वे साम्राज्य बह गए हैं। हो सकता है, यह 'दारू' अपनी सीमा मे दवा रूप मे हो, पर- जब इसकी बाढ आती है तो व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और सस्कृतिया ये सब तिनके की तरह बह जाते हैं।

विनाश सीधा नहीं आता- वह आता है, विलास बन कर, जिसकी बाह्य व्यजना है- कचन, कामिनी और कादबरी (मदिरा)। फिर सस्कृति सिमट जाती है- कोरे नाच गान मे। चारो ओर बनावट, दिखावट और सजावट का राज- फिर शेष केवल गिरावट!

कैवल्य – अपने बल पर

श्रमण महावीर ध्यानस्थ थे। एक गोपाल आया और कहने लगा– 'श्रमण! जरा देखते रहना– मेरे बैल चर रहे हैं।' गोपाल काम से बाहर गया था, फिर लौट कर आया– देखा, बैल नहीं हैं। पूछा– 'मेरे बैल कहा हैं?' श्रमण महावीर ने कुछ उत्तर नहीं दिया। इस पर गोपाल ने कहा– 'तू श्रमण नहीं, चोर है।' यो कहकर वह मारने को उद्यत हुआ। इतने मे इद्र ने प्रकट होकर कहा– 'सावधान, ये राजा सिद्धार्थ के वर्चस्वी राजकुमार वर्धमान हैं।' गोपाल ने अपराध के लिए क्षमा मागी।

इद्र ने कहा– 'भते! अभी तो आपको लबी तपस्या करनी है, सकट आवेगे, मुझे आज्ञा दे, मैं आपकी सेवा मे रहू।'

महावीर– 'इद्र! आज तक आत्मसाधको का इतिहास साक्षी है कि कैवल्य किसी के बल मे प्राप्त नहीं किया जा सकता। वह स्वय अपना रक्षक है, किसी द्वारा सरक्ष्य नहीं।'

श्रमण भगवान् के सम्मुख दो चित्र हैं, गोपाल और इद्र। एक विरोधी, दूसरा विनत। एक त्रासक, दूसरा भक्त। दोनो के प्रति समत्व-भाव। न द्वेप न राग।

श्रम के साथ विश्राम

एक किसान के पुश्तैनी मकान मे एक पुरानी घडी रखी थी। वह १५० वर्षो से बडी ईमानदारी से अपनी टिक्-टिक् सुनाती आ रही थी। प्रतिदिन किसान प्रभात होते ही अपनी घडी के पास जाकर देखता कि वह ठीक समय दे रही है या नहीं। वह किसान अपना काम ठीक समय पर सही ढग से करता।

एक दिन ज्यो ही किसान अपने कमरे मे घुसा, घडी बोल उठी- 'मुझे लगातार काम करते और ठीक समय देते डेढ शताब्दी बीत गई है, मैं अब थक गई हू। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि मैं अब विश्राम करू और टिक् टिक् करना बद कर दू।'

चतुर किसान ने उत्तर दिया 'पर, मेरी अच्छी घडी, तुम्हारी माग उचित नहीं। तुम शायद भूल गई हो कि प्रत्येक टिक्-टिक् में तुम्हे एक सेकड का विश्राम मिल जाता है।'

घडी ने एक क्षण सोचा और सदा की भाति अपना काम प्रारभ कर दिया।

इसका मतलब यह है कि व्यवस्थित कार्य मे थकावट है पर साथ ही विश्राम भी बराबर है। श्रम के साथ विश्राम, विश्राम के साथ श्रम यही नियमित जीवन की विशेषता है।

मा के कदमो मे जन्नत

एक लडका था। उसकी आदत थी कि वह अपन साथिया क साथ जाने क पहले अपनी मा के पाव चूमता था। एक दिन उसके आन म देर हा गई। उसके साथिया ने देर से आन का कारण पूछा। लडक न कहा- 'मैं जनत (स्वर्ग) के बाग की सैर कर रहा था।' साथिया न व्यग्य से कहा- 'जनत? कहीं दाजख ता नहीं।' लडका गभीर हाकर कहन लगा- 'हा जन्नत। मैंने सुना है- जनत मा के कदमा म लाटना है।'

कहते है जब मूसा ने भगवान् स बातचीत का ता भगवान् न ३५०० शब्द कहे। बातचीत के अत म मूसा ने कहा- 'भगवन्, कोइ याद रखन वाला अब सार बात बताव।' भगवान्- 'मूसा मैं तुम्हे आना दता हू कि अपने मा के साथ अच्छा व्यवहार करना।' य शब्द सात बार दुहराए गए। मूसा- 'मैं इन शब्दा का याद रखूगा।'

भगवान्- 'यदि तुम्हारी मा तुमस सतुष्ट है ता मैं सतुष्ट हू। यदि वह नाराज है तो मैं भी तुमसे नाराज हू।'

मातृदेवो भव- भारतीय सस्कृति का भी यही अमृत स्वर निनाद है।

जैसे - कोई देव दूत हो।

नेपोलियन बोनापार्ट बचपन में बहुत निर्धन थे, पर थे साहसी, ईमानदार और उद्योगी। एक दिन वे फ्रास के सम्राट् बन गए। सम्राट् होने के पश्चात् घूमते हुए उस गली की ओर निकले, जहा उन्हाने बचपन मे शिक्षा पाई थी। वहा उन्हे पुरानी बाते याद हो आईं। अकेले ही एक छोटे घर के सामने खडे हो गए। उस घर की एक बुढिया को बुलाकर कहा- 'बूढी मा। बहुत पहले इस स्कूल मे एक बोनापार्ट नाम का लडका पढता था। तुम्हे उसका कुछ स्मरण है?' बुढिया बोली- 'हा हा, मुझे स्मरण है। बडा अच्छा लडका था वह।'

नपालियन- 'वह तुम से फल मेवा रोटी आदि खाने-पीने की चीज लिया करता था। उसने तुम्हारे सारे दाम दे दिए या उधार भी बाकी रहे?'

बुढिया- 'वह उधार रखने वाला लडका नहीं था। वह तो अपने साथियो के भी पेसे चुका देता था।'

नपालियन- 'तुम बहुत बूढी हो गई हो। इससे तुमको सारी बाते याद नहीं। अपने पेसे देकर तुम भूल जाओ, यह तो ठीक है, किंतु ऋण लेकर भूलना ता ठीक नहीं। उस लडके पर तुम्हारे कुछ पसे उधार हैं। वह अपना ऋण चुकाने आया है। यह थैली लो।'

बुढिया को लगा- कोई दवदूत सामने खडा है।

चिंतन मनन

जुगनू - है प्रकाश का साक्षी

एक व्यक्ति उगते हुए सूर्य के दर्शन कर कह रहा था- 'हे सूर्य भगवान्! आप प्रभावान हैं, आप ही प्रेरणा हैं आप ही जीवनदाता हैं।'

इतन मे कहीं से महीन झीनी आवाज आई- 'तुम ठीक कहते हो- हम प्रकाशवान् सभी ऐसे ही हैं। हमारी यह प्रशसा सही है।'

आदमी चौंका। यह आवाज कहा से आ रही है? इधर उधर देखा देखा कि एक झाडी मे जुगनू बैठा है और कह रहा है- 'क्या देखता है हम ही हैं प्रकाशवान्!'

आदमी- 'कहा सूरज और कहा तू! झूठे अहकार मे फूला पाच सवारो म शामिल हो रहा है!' जुगनू बेचारा चुप।

ठीक है, सूरज और जुगनू मे अतर, बहुत अतर। पर जहा तक प्रकाश का प्रश्न है- सूरज, चाद, तारे जुगनू हैं तो एक जाति के।

जुगनू छाटा सही, पर वह भी पूरी ताकत लगाकर प्रकाश फैलाता है, अपनी औकात हैसियत के अनुसार। अधेरी रात मे न सूरज न चाद न तारे न नक्षत्र। उस समय के सूचीभेद्य अधकार मे वह खद्योत-प्रकाश का साक्षी बन जगल मे दीप सजोता है।

जहां चाह, वहा राह

एक राजा था। न्यायी था और उससे भी अधिक दयालु। वह कहता था- न्याय करना मनुष्य का धर्म है, पर दया करना भगवान् का। उस राजा को जहा से भी फरियाद सुनाई देती, कहीं भी जरूरतमद दुखी दिखाई देते, वह वहा तुरत सहायता पहुचाता।

एक बार ऐसा हुआ कि राजा की श्रवण शक्ति जाती रही। वह बहरा हो गया। जैसे ही वह बहरा हुआ कि रोने लगा। राज्याधिकारी एकत्र हुए और सहानुभूति दिखाने लगे। राजा ने उनसे कहा- 'मैं बहरा हो गया हू, इसलिए नहीं रो रहा हू। मैं इसलिए नहीं रो रहा हू कि मुझे चिडियो का कलरव सुनाई नहीं देगा या गायन के स्वर मुझे मोहेंगे नहीं। पर, मेरे रोने का मुख्य कारण यह है कि मैं अब दुखी पीडित प्रजाजन के आर्तनाद को न सुन पाऊगा और उनकी सहायता न कर सकूगा।' राज्याधिकारी लिख-लिख कर राजा को आश्वासन दे रहे थे। पर, राजा पर उनका कोई प्रभाव नहीं पडा।

फिर अचानक राजा खिलखिलाकर हसने लगा और कहने लगा- 'प्रभु बहुत दयालु हैं। अब चिता गई। मुझे एक उपाय सूझ गया है। आप लोग राज्य भर में मुनादी पिटवा दें कि अब से कोई व्यक्ति लाल कपडे नहीं पहने, क्योकि लाल कपडे वे ही लोग पहनें, जो दुखी, पीडित और जरूरतमद हों। अब लाल कपडे- प्रार्थना पत्र बनेंगे, जिनको देखकर और इस रूप में उनकी फरियाद सुनकर, उनके दुखों को दूर कर सकूगा।'

यानी जहा चाह, वहा राह।

सबमे वासुदेव

अयोध्या मे एक सत रहते थे। वे कहीं जा रहे थे। किसी दुर्जन ने उनके सिर पर लाठी मार कर उनको घायल कर दिया। लागा ने उन्हे बेहोश देखकर उठाया। उनका उपचार किया। मरहम पट्टी की। इतने मे सत को होश आ गया।

इसके बाद एक आदमी दूध लेकर आया और कहने लगा- 'महाराज। दूध पी लीजिए।'

सत उसकी बात सुनकर हसे और कहने लगे- 'वाह। भाई तुम भी बड विचित्र हा। पहले तो तुमने घायल कर दिया और अब शय्या पर सुलाकर दूध की मनुहार कर रहे हो।' दूध पिलाने वाला आदमी समझ नहीं सका, कहने लगा- 'महाराज। मैंने लाठी नहीं मारी। मैं तो साधारण गृहस्थ हू। श्रद्धा से दूध लाया हू।'

सत-'हा-हा मैं जानता हू। तुम बडे बहुरूपिए हो। तुम कभी लाठी से मारते हो तुम ही मरहम पट्टी करते हो और तुम्हीं दूध पिलाते हो। जा न पहचानता हो, उसके सामने फरेब चलेगा। मैं तुम्हारी माया जानता हू।'

तब जा कर समझ मे आया कि सत महाराज की दृष्टि मे सभी भगवान् हैं।

गीता मे कहा गया है- 'वह महात्मा सुदुर्लभ है, जो सर्व म वासुदेव के दर्शन करते हैं।'

दयालु दिल - कोमल भी, कठोर भी

एक बार जन्नत के फरिश्तो ने अल्लाह से पूछा -

'या अल्लाह! क्या दुनिया मे चट्टान से भी सख्त कोई चीज है?'

उत्तर मिला 'हा, हे। लोहा चट्टानो से सख्त होता है, यह चट्टानो को तोड सकता है।

'और लोहे से सख्त क्या है?'

'आग, क्याकि आग लोहे को पिघला सकती है।'

'और आग से बढकर?'

'पानी, क्योकि पानी आग को बुझा सकता है।'

'और पानी से ज्यादा सख्त क्या है?'

'हवा, क्योकि वह पानी में लहरे पैदा कर सकती है।'

'और उससे भी मजबूत कोई चीज है?'

'हा, है, दयालु हृदय, जो गुप्त रूप [illegible] जिसके बाए हाथ को भी मालूम नहीं होता कि दाया क्या

[illegible] ही है-चाहे [illegible] । वह [illegible] है। [illegible] बलि चढाकर देता [illegible] चिताओ मुक्त [illegible] देने के [illegible] भी

सौंदर्य।

दूसरे के अनुभव से भी सीखे

एक बार सिह ने शिकार के खुले बाजार मे भेडिए और लोमडी को साझी बनाया। उन्होंने एक गधा, एक हरिण और एक खरगोश-ये तीन जानवर मारे। अब सवाल आया-बटवार का।

आखेट को सामने रखकर शेर ने कहा- 'मित्र भेडिए! बोलो, इनको कैसे बाटे?'

भेडिया- 'इन तीन जानवरो की काटा-कूटी करने की जरूरत नहीं। आप गधा ल लीजिए। लोमडी खरगोश और मैं हरिण से सतुष्ट हो, काम चला लूगा।'

इसके उत्तर मे शेर ने क्रोध भरी गर्जना की और इस सलाह के इनाम मे पजे की एक चोट मे भेडिए को कुचल दिया। अब शेर लोमडी की आर मुडा और बोला-

'मेरी प्यारी बहिन लोमडी, तुम्हारा क्या प्रस्ताव है?'

लोमडी 'बडी-सीधी सी बात है, श्रीमन्!' यो कहकर उसने दडवत् किया और विनम्र स्वर मे कहा- 'सवेरे का कलेवा आप गधे से कीजिए। हरिण शाम का डिनर है और खरगोश आपके दोनो खाना क बीच का हल्का-सा जलपान।'

सिह 'प्यारी! ऐसी न्यायप्रियता और बुद्धिमत्ता तुम को किसने सिखाई?'

लोमडी- 'भेडिए ने।'

हम भी आज विश्व के साझा बाजार में है, यह कहानी हम कुछ सिखा रही है। देखे क्या सीखते हैं।

शब्द मे भटकन

चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी से दक्षिण भारत की यात्रा पर थे। उन्होने एक व्यक्ति को गीता का पाठ करते देखा। वह पाठ करने में तन्मय था, शरीर की सुध-बुध नहीं और प्रेमाश्रुओ की बहती धारा मे भीग रहा था।

महाप्रभु ने पूछा- 'देवता' लगता है, आप सस्कृत नहीं जानते। श्लोको का उच्चारण शुद्ध नहीं। पर, आप गीता का कौन-सा अर्थ समझ कर विभोर हैं?'

व्यक्ति ने तेजोमय भव्य पुरुष को देखा। वह चरणो मे लेट गया। 'मैं सस्कृत क्या जानू! यो ही पाठ करता हू। मुझे पाठ करते यही लगता भगवान् रथ पर बैठ कर-अर्जुन को समझा रहे हैं। भगवान् व अर्जुन को देखकर, प्रेम से मुझे रुलाई आती है।'

'भैया ! तुम्हीं ने गीता का सच्चा अर्थ समझा है। गीता का ठीक पाठ करना तुम्हें आता है।' यह कह कर महाप्रभु ने उस व्यक्ति को अपने हाथो से उठाकर हृदय से लगा लिया।

हम पाठ करते हैं, शुद्ध उच्चारण से-पर, उसके साथ भावधारा का प्रवाह नहीं। जब तक कोरे शब्द हैं, भटकन है। भाव है-सिद्धि है!

सच्चे दोस्त की तलाश

सुख बढ जाता, दु ख घट जाता
जदि कोई मनमेल्नू साथै, थाडा सा बट पाता।

पर, ससार की एक समस्या है, सब कुछ मिलने पर भी जिदगी भर मे एक भी ऐसा 'मनमेलू' मित्र नहीं मिल पाता- जिसे अपने दिल क सुख को सुनाकर सौगुना कर और दु ख को कहकर दिल हल्का करे। धन कुबर फोर्ड कहा करते- 'मुझे मारी जिदगी में एक भी ऐसा मित्र नहीं मिला, जिसे मैं अपने दिल की बात कह सकू, यदि मुझे आज भी मिल जाव ता मैं सारी सपदा देने को तैयार हू। पर, मैं जानता हू, ऐसा मुझे कोई मिलने से रहा।'

शायद इसीलिए कविवर रहीम कहते रहे-

'रहिमन' निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहे लोग सब बाटि न लैह कोय।

-जिदगी के ऐसे कटु अनुभवो म मनोव्यथा को छिपाए रखने के सिवा उपाय क्या है?

एक उपाय है, कारगर उपाय। हम तलाश करते हैं, सब तलाश करते हैं, पर, बनते ऐसे कोई नहीं।

तो क्या यह एक मार्ग नहीं है कि हम स्वय को अच्छे मित्र के लक्षणो मे भरे और किसी की तलाश को साफल्य मडित करे। यानी अच्छे दोस्त बन जावें। जिससे कोई कह सके- 'मीरा' के स्वरो मे

मन ना मिलै बासू मिलणू किस्यो रै।
मनैं मिल्या पाछे पड़दो किस्यो रै।

सीखे सिखावे

स्वावलबन- अपने पैरो पर खडे होना- शब्द अच्छा है, प्रेरक है, पर, है अधूरा। परावलबन- शब्द, उदासी भरा, गौरव को गिराने वाला। ये दोना शब्द लूले लगडे हैं।

शब्द तो सही है- परस्परावलबन। एक दूसरे से मिलकर, एक दूसरे को सहयोग दे। यही जीवन का परम धर्म ही नहीं, चरम सत्य है।

बच्चा प्रसूति गृह से प्यार, सहयोग और प्रेरणा का भूखा है और फिर जीवन के अतिम सास तक सहयोग का प्यासा है।

दुनिया के बडे-से-बडे आदमी भी अपने आप मे सब कुछ नहीं जानते। हमे एक दूसरे से सीखना है, आदमी को आदमी से, राष्ट्र को राष्ट्र से जाति को जाति से।

आज पश्चिम सिखा रहा है- पूर्व को भौतिक विज्ञान, यात्रिकी, अर्थशास्त्र जैसी अपरा विद्याए। पर पूर्व ने, खासतौर पर भारत ने वेदा का ज्ञान दिया बुद्ध वाणी दी और बापू के रूप म युद्धाग्नि मे जलते विश्व को अहिसा के अमृत का दान दिया।

एक बच्चा भी दूसरे बच्चे को ज्ञान दे सकता है- और नहीं तो क ख, ग सिखा सकता है। आओ हम मिल कर सीखे, सिखावे और दुनिया को बेहतर बनाए।

कम से कम इतना तो कह सके-

'माना कि इस जमीं को गुलशन न कर सके हम,
कुछ खार कम कर दिए हैं, गुजरे जिधर से हम।'

इस जमीन को चाहे हम फूलो की खुशबू से भरे एक बगीचे के मानिद न बना सके हा, पर थोडे से काटे जरूर कम किए हैं। यह भी एक सहयोग है- जिससे आने वाली पीढी की सफर खुशनुमा हो।

हम लेव पर दवे भी, क्योकि दाता का जीवन धन्य है।

परिवार की असीम सीमा

जिरह बख्तर से लैस याद्धा हुसैन ने एक-एक करके अपनी पत्नी उम्म लैला, अपनी बहनें-जनैब और कुलसूम और अपनी बेटी सुकीना से बिदा ली। इतने में बूढी नौकरानी हब्शिन आई। उसे देख कर, हुसैन की आखे भर आई- तुम मेरी मा के लिए निरलस काम करती रहीं। तुमने अनाज पीसा और बहुत मेहनत की। तुमने मुझे भुजाओ मे खिलाया। तुम्हारा चेहरा काला, दिल एकदम उजला। मैं तुम्हारा कृतज्ञ हू तुम्हारे उपकारो का कोई हिसाब नहीं लगा सकता। मेरे अनुचित व्यवहार के लिए मुझे क्षमा करना।' ऐसे कृतज्ञता से भर बोल जब कभी सुनने को मिलते हैं, तब विश्वास होता है, जीवन और जगत् सुदर ह- लाख खराबियो के बीच भी।

परिवार केवल मा बाप पुत्र-पुत्री-पत्नी तक सीमित नहीं- वह परिजना, कर्मचारियो, सहयोगिया और सहायका की सीमा को लाघता पशु-पक्षिया और पेड पाधो तक फैला है।

चेतक घोडे के लिए महाराणा की आखा में बहते आसू- बहु मोल गज-मोतियो से भी अनमोल हैं।

दो ही व्यक्तियो का सम्मान

यशस्वी ग्रथकार कार्लाइल का यह कथन चाहे अरण्य रोदन सा ही लगे, पर है यथार्थ सत्य और करणीय।

'मैं दो ही आदमियो का सम्मान करता हू, तीसरे का नहीं। एक तो परिश्रम से चूर कर्मकार का जो पृथ्वी की ही सामग्रियो से अपने परिश्रम से पृथ्वी का शृगार करता है और मानव जीवन को सुखी, स्वस्थ और रसमय बनाता है। मैं उन काम म लगे खुरदुरे हाथो का आदर करता हू, जिनकी निपुणता मिली सात्त्विकता ने भुवनव्यापी शोभा को बढाया है। मुझे उस धूप और शीत खाए धूलि धूसरित मुखड पर भक्ति है, जिससे सीधी सादी बुद्धि टपकती है।

दूसरा मनुष्य, जिसकी मैं प्रतिष्ठा करता हू और बहुत बढकर प्रतिष्ठा करता हू, जो शरीर पोषण के लिए नहीं, बल्कि आत्मा की पुष्टि के लिए परिश्रम करता है।

यदि कहीं मैं इन दोनो गुणो का लक्षण एक व्यक्ति म देखता हू तो मेरा हृदय उमडने लगता है।'

स्वस्थ कलेवर म तेजस्वी आत्मा की प्रतिष्ठा-यही जीवन की अखडता और पूर्णता है।

मैं विद्या को बेचता नहीं

राजा ने कहीं से सुन लिया, उन लडको के पैदा होने से क्या लाभ, जो न विद्वान् हो, न भक्त हो। राजा के सामने अपने राजकुमारो की तस्वीरें घूमने लगीं- जो निरक्षर थे। राजा ने नगर पडितो को बुलाकर कहा - आपमे कौन है जो मेरे इन राजपुत्रो को पढाने का दायित्व सभाले। लडके हो रहे थे- पद्रह वर्ष से भी ऊपर। पडितो ने कहा- 'महाराज! इनको कैसे पढाए? व्याकरण, राजनीति, अर्थशास्त्र का ज्ञान कराने मे दसो वर्ष खत्म हो जाएगे।'

राजा- 'समय कहा, सार सार पढाने का प्रश्न है- थोडी सी अवधि मे।'

एक पडित विष्णु शर्मा आगे बढे, कहने लगे- 'राजन्! खूब आनद करे। इन राजकुमारो को मुझे सौंप दीजिए। छह महीनो मे इनको राजनीति, धर्म, व्यवहार, सब मे पारगत कर दूगा। यदि न करू तो मेरा नाम विष्णु शर्मा नहीं। यह मेरा सिह गर्जन है।

राजा- 'मैं आपके चरणो में नत हू। इस पढाई के बदले १०० गाव आपको भेट।'

विष्णु शर्मा- 'राजन्! मैं विद्या को बेचने वाला नहीं हू। मैं धन-लिप्सु नहीं। तुम्हारी प्रार्थना को सुनकर विद्या विनोद करना चाहता हू।' छह महीनो में राजकुमार समझदार और विशारद हो गए।

विष्णु शर्मा ने पशु-पक्षियो के कथाछल से जीवन का सपूर्ण शास्त्र 'पचतत्र' मे ग्रथित कर डाला।

'पचतत्र' की कहानिया सारे ससार को जीतती हुई सभी भाषाओ पर अपनी छाप छोडती आज भी पडित विष्णु शर्मा के सिह नाद को ध्वनित प्रतिध्वनित कर रही हैं।

भीतर की सुरक्षा भी

मूसलाधार वर्षा हो रही है। चरवाहा बेफिक्र है, क्योंकि उसकी झोपडी मजबूती से छाई हुई है। इतने मे बाहर एक पीत वस्त्रदारी सन्यासी छप्पर से चूती जलधाराओ मे भीगता खडा हो जाता है। चरवाहा झोपडी की खुली छोटी सी खिडकी से उसे देख लेता है और कहता है- 'सन्यासी तुम वही रहो। तुम्हारे लिए वही पर्याप्त है।' फिर वह चरवाहा मस्ती मे झूमता हुआ गाता है- बादलो को चुनौती देता हुआ-

'मेरे पशु घर के भीतर हैं, आग तेजी से जल रही है, पत्नी सुरक्षित है बच्चे मीठी नींद सो रहे हैं। इसलिए ऐ बादलो! यदि तुम आज रात बरसना ही चाहते हो तो बरसो।'

तब वह पीत वस्त्रधारी सन्यासी यानी बुद्ध बाहर से उसी मस्ती म जैसे उत्तर देते हैं-

'मेरा मन नियंत्रित है। मेरी इद्रिया सयमित हैं। मेरा हृदय दृढ है। इसलिए ऐ बादलो, यदि आज रात बरसना ही चाहते हो तो बरसो।'

चरवाहा गाता है- 'खेत कट गए हैं। चारा खलिहान मे एकत्र है। नदी लबालब है और सडके ठोस हैं। अत ऐ बादलो! यदि आज रात भर तुम बरसना चाहते हो तो बरसो।'

सन्यासी गाता है- 'काम क्रोध सब कट गए हैं। ज्ञान भीतर एकत्र है। करुणा की नदी उमड रही है। प्रज्ञा का मार्ग ठोस है। अत ऐ बादलो, यदि आज रात भर बरसना ही चाहते हो तो बरसो।'

यह क्रम चलता रहा। अत मे चरवाहा पश्चाताप और आश्चर्य से भर उठता है और बाहर आकर सन्यासी के चरणो म नत हो जाता है।

बाहर की सुरक्षा महत्त्वपूर्ण है पर अधूरी है, क्षणिक है। भीतर की चारित्रिक सुरक्षा-सदा रहने वाली सच्ची है। ये दोनो सधे, इसी का नाम धर्म है। अभ्युदय और नि श्रेयस् दोनो के मेल को धर्म कहा है- महर्षि कणाद ने।

धीरे धीरे आगे बढो

एक नौजवान भरपूर जवानी के जाश मे तेज चला, लबा सफर कर एक पहाड की तलहटी मे रुक कर सो गया। एक बूढा आदमी पीछे आया। उसने कहा- 'तुम सो क्यो रहे हो? उठो, यह आराम करने का समय नहीं।' जवान- 'मैं थका हुआ हू, जब शक्ति आएगी, सफर शुरू करूगा।'

बूढा- 'क्या तुमने यह कहावत नहीं सुनी कि दौडकर चलने और थक जाने की अपेक्षा धीरे-धीरे आगे बढना और ठहर जाना अच्छा है।'

तू जो अपने मुकाम पर पहुचना चाहता है, जल्दी न कर। मरी नसीहत सुन। सब्र करना सीख।

अरबी घाडा पूरी तेजी से दो-चार दौड लगा सकता है पर ऊट धीरे-धीरे दिन और रात सफर करता है।'

अस्पे ताजी दोतक रवद बशिताब।
उश्तर आहिस्ता मीरवद शबोरोज॥

अरबी घोडा दो-चार कोस दौड लगा सकता है। पर ऊट धीमी चाल से रात-दिन चला करता है।

व्यवस्था का झुकता तराजू

बडा भारी भोज। खीर बनाई गई। इतने मे एक कुत्ता आया और इसे जूठा कर भाग गया। अब प्रश्न उठ खडा हुआ एक आर खीर खाड का देव भाजन और दूसरी ओर इसे कुत्ता क कारण खाने का निषेध। लोग ओझाजी के पास पहुचे। ओझा भी यहा निमत्रित थे। प्रश्न-व्यवस्था का था।

ओझाजी का मन खीर मे डूबा था, अत व्यवस्था भी रगीन बन गई, लुभावनी, सर्वजन सुहावनी।

काला कुत्तम सदा उत्तम, भूरा कुत्ता सरासरी।
जै हो कुत्ती किरङकाबरी, बीं की के हो बराबरी॥

– 'काला कुत्ता तो उत्तम है ही। भूरा कुत्ता हो तो भी ठीक ही है, हानि नहीं। और यदि धब्बेदार कुतिया हो तो उसका तो कहना ही क्या!'

आज भी हमारी व्यवस्था का तराजू अपनी ओर झुकता है। हम किसी को नाराज नहीं करेगे, सभी की तरह-तरह से तारीफ करगे और उस तारीफ के मोल फिर अपना उल्लू सीधा करगे।

कृषि-संस्कृति मे लोक संग्रह

जिस समय धरती पुत्र किसान हल लेकर धरती माता मे बीज बोने जाता है तो वह कहता है-

'चीडी कमेडी, बेन-बेटी, आयो गयो, गेलार्थू, हाली बालदी, गाय बाछी, कीडी मकोडी, जीव जतु, कारू कमीण सगला रै भाग रो देईजे।'

-हे माता। इस उपज मे सभी का हिस्सा है। चिडिया, पेडुकी, बहिन-बेटी, राहगीर, नौकर-चाकर, हलचलाने वाले, गाय-बछडी, चींटी आदि सभी जीव-जतु और कारु कर्मी (शिल्पी-जैसे बढई कुम्हार आदि) सभी के भाग्य का तू देना।

यानी हमारा हलधर सपूर्ण परिवेश के साथ एकाकार है। वह जानता है-काम मैं करूगा, पर फल के अधिकारी सब हैं। सभी मेरे हिस्सेदार हैं। सभी का भाग्य यहा फलित हो रहा है।

किसान चाहे गीता न जानता हो, पर गीता की भावधारा यहा स्वाभाविक रूप से प्रवाहित है। फल पर सब का अधिकार है, यह फलाकाक्षा रहित कर्मवृत्ति-यही गीता की मूल सवेदना यहा मुखर है।

किसान का हल हमारी सारी समस्याओ का हल है। कृषि के बल पर ऋषि की चितना है, इसी के बल पर 'असि' तलवार टिकी है और सारे मसी-जीवी (लेखक पत्रकार आदि) अपना काम सही ढग से कर सकते हैं।

हमारी कृषि-सस्कृति लोक सग्रह को समेटे जब तक है, तब तक भारत की चिरतनता अक्षुण्ण है।

जान-पहचान को आदर

कहा राजा भोज और कहा गगवा तेली 'यह कहावत एसी चली कि लोग भूल गए कि सुप्रसिद्ध राजा गागेय तैलप- हार गए भोज से, इससे लागो ने इस नाम को बिगाड कर गागेय तैलप से 'गगवा तेली' बना दिया।

पर, अब तो राजा भोज और गगवा तेली ही चल पडे हैं। एक दिन गगवा ने राजा भोज से कहा- 'अन्नदाता! कभी मेरे यहा भी पधार।' अपने राजसी वैभव को त्याग कर एक बार राजा भोज साधारण वेशभूषा मे गगवा क यहा पहुच गए। कहने लगे- 'जरा तेलियो की बस्ती में घूमना है। साथ चल, मेरा परिचय न देना।'

गगवा जहा जावे, वहीं गगवा की खातिरी, आव भगत। साथ वाले को कोई पूछे भी नहीं।

एक तेली के यहा दानो पहुचे। तली ने गगवा को बैठने के लिए मूढा दे दिया और राजा को न पहचानने के कारण पास में रखी एक मोगरी दे दी। राजा उस पर बैठ गया। इतने मे एक जान पहचान का आदमी आ गया। उसने राजा की अवमानना देख कर कहा- 'सच है, आदर तो जान पहचान का है। यदि पहचान न हो और आदर सत्कार न हो तो इसमे गुस्सा करने की बात नहीं। जो गुस्सा करे, वह नासमझ है। सच है-

जाण की पिछाण, रीस करै सो रुड्डा।
राजा भोज नै मोगरी, गागलै नै मुड्ढा॥

बच्चो पर प्रभाव

सर् प्रभाशकर पट्टनी लदन की सडक पर पैदल घूमने निकले। भारतीय वेश, लबी दाढी और मोटा सोटा लिए यह भारतीय अग्रेज बालको के लिए विचित्र सा लगा। वे इकट्ठे होकर उन पर ककडिया फेकने लगे।

सर प्रभाशकर जरा भी उत्तेजित नहीं हुए। शात, गभीर होकर खडे हो गए। उन्हाने लडको को न डाटा, न फटकारा। वे कहने लगे- 'वाह बच्चो! तुम मे उत्साह है, फुर्ती है। मैं तुम पर बहुत खुश हू। आओ, मैं तुम्हे जलपान के लिए आमन्त्रित कर रहा हू।'

बालक इस वृद्ध की सुदर अग्रेजी और मधुर वाणी से बहुत प्रभावित हुए। सर प्रभाशकर उन्हे पास के होटल मे ले गए और अपने पैसो से जलपान कराया।

जरा आख खुली रखे

ज्ञान-चक्षु कब खुलेगे, नहीं जानते। पर, ये चर्म चक्षु (बाहरी चमडे की आखें) भी हम कहा खोलते हैं। चारो ओर कितना ज्ञान बिखरा पडा है, उसे भी देखकर समझने की कोशिश कहा करते हैं। हम अधो की तरह चलते हैं। ये किताबें महत्वपूर्ण हैं, पर इनमे सारे अनुभव नहीं हैं। सारे अनुभव अभी कहा लिखे गए हैं।

सारे अनुभव, अतहीन अनुभव-अभी हवा मे हैं, वायुमडल मे हैं, धरती मे हैं, रगबिरगे बादलों मे हैं, धरती पर उगते पौधे मे हैं। रेगते कीडों, उडते परिंदों, पास मे बैठे बूढो को देखो, नए मौलिक भावो विचारो से हम समृद्ध हो उठेगे।

इन झरनो को बहते देखो-इनमें हजारो गीत बह रहे हैं। इन स्थिर चट्टानों मे न जाने कितने अडिग सिद्धात विजडित हैं। ये गिरिशिखर जीवन की उदात्त कल्पना से खडे हैं। पल-पल में मुद्रा बदलते ये समुद्र-जीवन के नित नूतन बदलते सदृश्यो से आगे की ओर इगित कर रहे हैं।

बधुवर! जरा आख खुली रखें, तो नए-नए अछूते क्षितिजो की बद खिडकिया खुलती ही जाएगी। अद्भुत, निरुपम, विस्मयावह खिडकिया।

राज्य पर घमंड कैसा!

एक बादशाह एक फकीर के पास उपदेश लेने पहुचे। फकीर मस्त और खरीखरी बात कहने वाला।

फकीर- 'तू यदि रेगिस्तान में भटक जाए, प्यास के मारे मर रहा हो और कोई गंदे नाले का एक प्याला पानी लेकर आवे और कहे- इस प्याले के पानी का मूल्य तेरा आधा राज्य है। बोल, मरता तू क्या करेगा?'

'मैं शर्त मानकर प्याला ले लूगा। जान बची, सब बचा।'

फकीर- 'वह सडा पानी रोग पैदा कर दे। तू पीडा से झटपटा रहा हो, मरणासन्न हो जाए और कोई नामी हकीम पहुच कर कहे- 'बाकी आधा राज्य दे दे तो अमोल दवा से शर्तिया इलाज कर दू।'

बादशाह- 'मैं बाकी राज्य दे दूगा। जीवन ही नहीं रहेगा तो राज्य किस काम का?'

फकीर ने समझाया- 'तो बस एक काम कर, बादशाहत का घमड छोड कर सब की सेवा कर। एक प्याले के सडे पानी और उससे पैदा हुई खराबी के मोल जो दिया जा सके, उस राज्य पर घमड कैसा?'

जरा आख खुली रखे

ज्ञान-चक्षु कब खुलेगे, नहीं जानते। पर, ये चर्म चक्षु (बाहरी चमडे की आखें) भी हम कहा खोलते हैं। चारो ओर कितना ज्ञान बिखरा पडा है, उसे भी देखकर समझने की कोशिश कहा करते हैं। हम अधो की तरह चलते हैं। ये किताबे महत्त्वपूर्ण हैं, पर इनमे सारे अनुभव नहीं हैं। सारे अनुभव अभी कहा लिखे गए हैं।

सारे अनुभव, अतहीन अनुभव-अभी हवा मे हैं, वायुमडल मे हैं, धरती मे हैं, रगबिरगे बादलो मे हैं, धरती पर उगते पौधे मे हैं। रेंगते कीडों, उडते परिंदों, पास मे बैठे बूढ़ों को देखो, नए मौलिक भावो विचारो से हम समृद्ध हो उठेंगे।

इन झरनो को बहते देखो-इनमें हजारो गीत बह रहे हैं। इन स्थिर चट्टानो मे न जाने कितने अडिग सिद्धात विजडित हैं। ये गिरिशिखर जीवन की उदात्त कल्पना से खडे हैं। पल-पल में मुद्रा बदलते ये समुद्र-जीवन के नित नूतन बदलते सदृश्यो से आगे की ओर इगित कर रहे हैं।

बधुवर! जरा आख खुली रखें, तो नए-नए अछूते क्षितिजो की बद खिडकिया खुलती ही जाएगी। अद्भुत, निरुपम, विस्मयावह खिडकिया।

राज्य पर घमंड कैसा!

एक बादशाह एक फकीर के पास उपदेश लेने पहुचे। फकीर मस्त और खरीखरी बात कहने वाला।

फकीर- 'तू यदि रेगिस्तान मे भटक जाए, प्यास के मारे मर रहा हो और कोई गदे नाले का एक प्याला पानी लेकर आवे और कहे- इस प्याले के पानी का मूल्य तेरा आधा राज्य है। बोल, मरता तू क्या करेगा?'

'मैं शर्त मानकर प्याला ले लूगा। जान बची, सब बचा।'

फकीर- 'वह सडा पानी रोग पैदा कर दे। तू पीडा से छटपटा रहा हो, मरणासन्न हो जाए और कोई नामी हकीम पहुच कर कहे- 'बाकी आधा राज्य दे दे तो अमोल दवा से शर्तिया इलाज कर दू।'

बादशाह- 'मैं बाकी राज्य दे दूगा। जीवन ही नहीं रहेगा तो राज्य किस काम का?'

फकीर ने समझाया- 'तो बस एक काम कर, बादशाहत का घमड छोड कर सब की सेवा कर। एक प्याले के सडे पानी और उससे पैदा हुई खराबी के मोल जो दिया जा सके, उस राज्य पर घमड कैसा?'

एक-एक बूद की किफायत

एक बार मगन बाडी मे कनु गाधी और काति गाधी आश्रम के कुए के समीप बर्तन धो माज रहे थे। जरूरत से ज्यादा पानी का इस्तेमाल कर रहे थे। गाधीजी उधर से निकले। पानी की बर्बादी देख'कर'वे रुक गए। 'देखो, कितना पानी जाया कर रहे हो? इतने से बर्तन धौने मे इतना पानी बर्बाद करना चाहिए? अभी तक आश्रम के बर्तन धोना भी सीख नहीं पाए।'

काति- 'बापूजी, हमलोग कुए से पानी निकाल-निकाल कर बर्तन धो रहे हैं। कुए मे अथाह पानी भरा हुआ है।'

गाधी- 'पानी निकालने मे अपनी शक्ति लगा कर- झूठमूठ समय मत गवाओ। समय को देश सेवा के लिए सुरक्षित रखो।'

यह कह कर गाधीजी चले नहीं गए। वहीं बैठ कर कम-से-कम पानी खर्च करके बर्तन कैसे धोए जाते हैं, यह करके दिखाया और उनसे करवाया।

बापू का यह अर्थ शास्त्र- क्या आज के सदर्भ में और अधिक प्रासगिक नहीं है। पानी की एक-एक बूद की किफायत हो ताकि भावी विश्व को पानी के लिए तरसना न पडे।

भूख - परम रोग

एक समय शास्ता का प्रवचन समारोह था। दूर-दूर से श्रोता आ रहे थे। एक उपासक था, गरीब था, पर, बुद्ध के दर्शन का प्यासा। उसका बैल खो गया था, अत उसकी तलाश मे बहुत समय निकल गया। भूखा-प्यासा आखिर वह प्रवचन मे पहुचा। बुद्ध ने प्रवचन बद कर दिया। एक भिक्षुक से कहा- 'जाओ, इस आगतुक को भोजन कराओ। और फिर घर भेज दो।' भिक्षुक- 'प्रवचन?' बुद्ध- 'भूख से पीडित होने वाला धर्म को नहीं समझ सकता। याद रखो- भूख के रोग के समान कोई रोग नहीं।' गाथा कही-

'जिधच्छा परमा रोगा।'

बुभुक्षा (भूख) परम रोग है।

पाच हजार वर्ष बाद भी हम इसे कहा समझ पाए हैं। भूखा के नाम पर राज्य करने वाले- भूखो के नेता, भूखो के नाम पर सत्ता भोगी प्राय मालामाल, तृप्त और सुख-शय्या पर लेटे हैं।

नेता को गम बहुत है/मगर आराम के साथ।

-अकबर इलाहाबादी

सब में एक ही आत्मा

सुप्रसिद्ध विद्वान् विश्वनाथ तर्कभूषण बीमार पडे थे। चिकित्सक ने आदेश दिया- 'रोगी को एक बूद भी जल नहीं देना चाहिए। पानी देते ही उसकी दशा बिगड जाएगी।'

तर्कभूषण जी को जोरों की प्यास लगी थी। उन्होंने घर वालों से कहा, 'अब तक मैंने ग्रथों में पढा है और दूसरों को उपदेश दिया है कि प्राणियों में एक ही आत्मा है, मुझे इसका प्रत्यक्ष अनुभव करना है। निमत्रण देकर बुलाओ और उनको शरबत, तरबूज का रस और नारियल का पानी पिलाओ।'

घर के लोगों ने यह व्यवस्था कर दी। आगतुक शरबत या नारियल का पानी पी रहे थे और तर्कभूषण महोदय यह अनुभव कर रहे थे- 'मैं पी रहा हू।'

उनकी रोगजन्य तृषा इस अनुभव से शात हो गई। किसी के सुख में सुख का अनुभव करना- इसी को महर्षि पतजलि ने 'मुदिता' नाम से सबोधित किया है, पर हम दूसरों के सुख में 'सुख' का तो नहीं- ईर्ष्या की पीडा को भोगते हैं। तुलसीदास जी को इस कटु सत्य की पीडा का बोध था- 'उजरे हरष विषाद बसेरे।' उजडने पर खुशी होती है और कोई आबाद हुआ है- यह जानकर दुख होता है- दुष्टों को। पर, हम तो अपने को सज्जन समझते हैं तो आइए सज्जनों के गुणों को धारण कर नया अध्याय लिखे।

जो अभी है – वही यथार्थ!

जीवन तभी जीवन हो, जब नयी परिस्थिति के अनुसार नए परिवेश में अपने को तैयार रखे। नहीं तो काल का दण्ड प्रहार बड़ो-बड़ों को चूर कर देता है।

पुरानी बीती बातो की जिंदगी भर जुगाली करने से जिंदगी नहीं चलती। कभी-कभी साप निकल जाता है और हम साप की लकीर पीटते रहते हैं। या डान क्विग सोट की तरह मनगढत भूता से, अधेरे से, लडने झगडने में जिंदगी अकारथ गवा देते हैं।

जो आज है, अभी है, यही यथार्थ है। आज कोई उत्तर नहीं है, यह प्रश्न है, यह चुनौती है, यह शका है, यह समस्या है– इसका उत्तर देना, समाधान प्रस्तुत करना– इसी का नाम पुरुषार्थ है। इसी का नाम कर्म योग है, जहा अध्यवसाय है– कर्म कौशल है।

'योग कर्मसु कौशलम्।'
गई बात नै जाणदे, रही रही नै सीख।
अब क्यू कूटै बावली, मुवै साप की लीक॥

–जो गई, वह गई। जो है, उसको रख। अरी पगली! मरे हुए साप की लकीर पीटती क्यों है?

मतलब की मनुहारे

एक बात नीति की है, व्यवहार की है। जिसके पीछे जीवन की असलियत है, जीवन की नग्न सच्चाई है। चाहे अप्रिय हो, पर है यही सोलहो आने सच।

मतलब की मनुहार है। निमत्रण मिलता है, या तो निमत्रण के बदले मे या डर के कारण, या जिनके यहा आना-जाना हो या जहा काम-धधा हो। या गीत गाने का हो। जब तक यह स्थिति है-तब तक पूछताछ, आवभगत, मेल मुलाकात।

नूतो नूतै को, नूतो जूतै को।
नूतो आवण जावण को, नूतो गीत गावण को।

जब यह स्थिति समाप्त तो नूता (निमत्रण) गायब।

कविवर 'रहीम' ने भी इस अप्रिय स्थिति का कटु अनुभव किया-

काज पड़े कछु और है, काज सरै कछु और।
'रहिमन' भावरि के परै, नदी सिरावत मौर॥

- पर धर्म कहता है- सबध बने तो अटूट रहे। अतिम प्रश्न- न नीति का है और न धर्म का, प्रश्न है- मानवता का। मानवता अवश्य कहेगी- सबध तो तभी सबध है- जब उसमे स्वार्थ की गध न हो।

कल्याण का एक ही मार्ग

अब से १०२ वर्ष होने को आए – अमृत-पुत्र स्वामी विवेकानन्द की शिकागो वक्तृता को। इस विज्ञान के तेज रफ्तार मे भी – आज भी अभी भी – उनकी अतिम वक्तृता का अतिम अश मानव जाति के पथ प्रदर्शन के लिए ज्यो-का-त्यो मणि दीप की तरह ज्योतिर्मय है। इसे हमे दुहराना है – जब तक हम जीवन मे इसे उतार न पाव – तब तक।

'अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणो के बावजूद भी यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जाएगे और केवल उसका धर्म ही अपनी सर्वश्रेष्ठता के कारण जीवित रहेगा तो उस पर मैं अपने हृदय के अतस्तल से दया करता हू और उसे बतलाए देता हू।

कि वह दिन दूर नहीं है, जब उस जैसे अडगो के बावजूद भी प्रत्येक धर्म की पत्रिका पर यह स्वर्णाक्षरो से लिखा रहेगा –

'सहयोग, न कि विरोध,' 'पर-भाव-ग्रहण, न कि पर-भाव-विनाश,' 'समन्वय और शाति, न कि मतभेद और कलह।'

विश्व के कल्याण के लिए स्वामीजी के इन 'सकारो' को स्वीकारो-

सहयोग, सारग्रहण, समन्वय – तभी शाति। आज भी और कोई रास्ता नहीं, और कोई विकल्प नहीं। शाति का यही एकमात्र सीधा सरल प्रशस्त, राजमार्ग है।

'काहे को रोकत मारग सूधो।'

सच्चा साधक

विश्व के ऋषि वैज्ञानिक आइस्टीन बैठे हुए, अपने में खोए हुए, किसी गभीर गुत्थी को सुलझाने में उलझे बैठे थे। इतने मे उनकी पत्नी नाक-भौं सिकोड़ती आई और कहने लगी – 'आपने नया नौकर क्या रखा है, बिल्कुल गधा है। उसे निकाल दीजिए।'

अपने विचारो में डूबे आइस्टीन ने कह दिया – 'ठीक है।' पत्नी चली गई, लेकिन दूसरे दरवाजे से गुस्से से भरा तमतमाता नौकर आया – 'प्रोफेसर! आपकी पत्नी मे नाम मात्र की भी मनुष्यता नहीं है ' पूरी बात खत्म भी नहीं हो पाई थी कि वे बोल पड़े – 'ठीक है।'

बाहर बरामदे में बैठी पत्नी ने सुन लिया। वह तमतमाती कमरे की ओर झपटी और कहने लगी – 'प्रोफेसर! तुम नौकर के सामने मेरा अपमान करते हो। तुम पागल तो नहीं हो गए हो?'

इस बार भी आइस्टीन ने विश्वास के साथ कहा – 'ठीक है।'

सुनकर पत्नी और नौकर ने एक-दूसरे की ओर चकित होकर देखा। दोनों की हसी लाख रोकने पर भी नहीं रुक सकी।

पर, आइस्टीन कुछ भी समझ नहीं पाए कि यह माजरा क्या है!

सच्चा साधक इसी प्रकार बाहर से अनासक्त रहकर आत्मलीन रहता है। बाहर सभी शुभ, सभी शून्य – तभी वह भीतर परमानद में डूबा, पूर्णता का अनुभव करता है। यह भी पूर्ण-वह भी पूर्ण!

'मैं' नरक

विश्व में ध्यान सप्रदाय का प्रारभ करने वाले भगवान् बुद्ध के अनुयायी बोधिधर्म चीन गए। चीन के बादशाह ने बादशाही ढग से कहा- 'महात्मन्! आप पधारे, आपका स्वागत। मैंने हजारो बुद्ध-बिहार बनवाए, लाखो छायादार पेड रास्ते मे लगवाए हैं, ताकि मुसाफिर विश्राम करे, जगह-जगह भोजनालय खोल रखे हैं, हजारो भिक्षुओ का मेरे यहा पोषण होता है, शास्त्रो को मैंने लिखवा कर बटवाया है। इन सब पुण्यो का अतिम फल क्या होगा?'

बोधिधर्म गभीर हो गए, कहने लगे- 'सीधे नरक जाएगे।' सम्राट् चौंक गए। ऐसी बात तो आज तक किसी ने कही नहीं। शिष्टाचार भी नहीं।

बोधिधर्म- 'सुनिए, जरा शात होकर। तुमने क्या किया या क्या नहीं किया- इससे स्वर्ग नरक का सबध नहीं। पर, 'तुमने' किया- यहा जब तक 'मैं' है, 'मैं' ने किया- इसमे कर्त्तापन का भाव है। कर्त्तापन का भाव ही नरक है। तुमने यह नहीं सोचा कि कोई तेरे भीतर बैठा करवा रहा है- उसे तुम भूल गए। इसी का दड है- भावी नरक यातना।

सचमुच पाप पाप है, पर, पुण्य का अहकार सबसे बडा पाप है।

इसीलिए गीता में कहा गया है- 'निमित्त मात्र भव सव्यसाचिन्।' हे अर्जुन! तू तो केवल निमित्त मात्र हो जा।

मिलन का दर्शन

मिलन महोत्सव है। नाले उमडते हैं- नदियो मे मिलकर खो जाते हैं। नदिया बहती हैं और नाचती हुई सागर मे मिलकर एकाकार हो जाती हैं। सागर मे मिलकर अपना नाम भी चाहे तो ऐसा मिलन सभव नहीं। मिलन म खोना भी पडता है- यही पाने की भूमिका है।

मिलन का एक मात्र दर्शन है प्रेम। पर, हम मिलते हैं- घृणा के कारण। नफरत का उमडता हुआ सैलाब अत मे सब को ले डूबता है। या मिलते हैं- भय के कारण। डर से मिले हुए एक दिन तीन तेरह हो जाते हैं।

एक बार चावल-दाल के साथ काचर भी मिल गया। पर- समझ मे आया तो 'दाल चावल भेला कोकला किनारे।' अत मे दाल-चावल तो मिल गए पर, काचर को किनारे पर फेक दिया। बहुत से मिलते हैं और चाहते हैं- हमारे जैसे हो जावे-

"सुहागण लागी विधवारै पाव
म्हारै जिसी कर दै म्हारी माय।"

एक बार एक सुहागिन विधवा के पैरा लगी और आशिष चाहने लगी- विधवा ने कहा, 'हे देवी। हे मातेश्वरी। यह वधू मुझसे आशिष माग रही है, तू कृपा करके इसे मेरे जैसे बनादे।'

यह आशिष- अभिशाप रूप है। मिलन तो ठीक- पर, पता चलेगा यह वरदान है, विनाश है या अभिशाप? समय ही कसौटी है।

इतिहास साक्षी है, सहित तभी सही है- जब हित के सहित हो, नहीं तो सबको रहित होना पडता है। विवाह का ग्रथि बधन भी टूट जाता है, यदि तन किसी के साथ हो और मन किसी के साथ।

मिलन का एक मात्र दर्शन है, प्रेम और हित। न भय, न घृणा और न अविश्वास।

मित्रता का आदर्श

सिसली के राजा ने एक सामान्य अपराध पर डेमन को फासी की आज्ञा दे दी। डेमन ने प्रार्थना की– 'मुझे एक वर्ष का समय दे दिया जाए। मैं ग्रीस जाकर अपनी सपत्ति और परिवार का ठीक प्रबध करके आ जाऊ।' राजा– 'तुम्हे केवल एक शर्त पर छोडा जा सकता है। कोई तुम्हारी जमानत ले और वचन दे कि यदि तुम लौट कर न आओ तो तुम्हारे स्थान पर वह फासी पर चढे।'

राजा के निर्णय को सुनकर डेमन का पक्का दोस्त पीथियस तैयार हो गया। इससे डेमन चला गया।

पीथियस चाहता था– 'मेरा मित्र किसी समुद्री तूफान के कारण न आ सके और मुझे मित्र के लिए प्राण देने का सौभाग्य मिल सके।'

साल बीत गया। पीथियस को फासी का हुक्म हुआ। उसे पकड कर वध-स्थान पर ले जाया गया। वह प्रसन्न था। इतने मे एक नौजवान दौडता हाफता आया। दूर से चिल्लाया–'मैं डेमन हू। मेरे मित्र को फासी मत दो। मैं आ गया।' डेमन चला तो था समय से ही, पर बीच म तूफान आ गया।

मुश्किल से सागर किनारे पहुचा। वहा से जो सवारी मिली– दौडा भागा। अत मे एक घोडे को तेज दौडाता आया। आते ही घोडा मर गया। वह भूखा रहा, पैरो मे छाले। पर उसके चेहरे पर खुशी की चमक थी। उसके मित्र ने इतना ही कहा– 'काश! थोडी देरी कर देते।' दोनो गले मिले। प्रेमाश्रुओ से भीग गए।

इस दृश्य से राजा प्रभावित हुआ। उसने फासी की सजा रद्द कर दी। राजा ने कहा– 'मुझे भी अपना मित्र बनाओ।' इस प्रकार दो से तीन मित्र बन गए।

कभी-कभी इतिहास कहानी से अधिक रोचक, मोहक और प्रेरक होता है।

भीतर का चिराग

जीवन का अर्थ जल भी हैं। जल कोमल है और कठोर भी। उसकी गति सीधी, बर्फ के रूप मे जड और भाप के रूप मे ऊर्ध्व (ऊची) भी है। यह हमारे पर निर्भर है कि हम उसे किस रूप मे बितावे।

पर, हम कर भी क्या! जीवन सरल सीधा है, पर स्थितिया इसे जटा की तरह जटिल बना देती है। तब लगता है कि जीवन उलझा हुआ, समस्याओ से भरा है। इधर समाज के कर्णधार अपने-अपने स्वार्थो मे इतने भरे रहते हैं कि ये सुलझाने के नाम पर उलझने बढा देते हैं।

कभी-कभी नामधारी नेताओ की गलतिया पूरे समाज को फसा देती हैं।

बडी मुश्किल है कि हालात की गुत्थी सुलझे।
अहले दानिश ने बडी सोचकर उलझाया है।

फिर- जीवन बन जाता है, एक पहेली, एक गारखधधा! जिन पर भरोसा किया था, वे ही धोखे की टट्टी साबित होते हैं। हम साहस बटोर नहीं पाते ओर सच्चाई जबान तक आकर बुदबुदाती सी है। हा- हिम्मत करके कोई शायर कभी-कभी इस विवशता को जबान देता है-

कहने की बात, मगर कहेगा कौन?
नाखुदा ने कितने सफीने डुबो दिए।

थे नाखुदा- यानी ये केवट कब तक अपना खेल खेलगे। अच्छा हा कि हम सभी अपने भीतर के चिरागो को सभाले और उनकी रोशनी मे अपना रास्ता तय करे।

बुझ रहे है चरागे दैरो-हरम[१]
दिल जलाओ कि रोशनी कम है।

१ - मदिर मस्जिद

कह चकवा कह चकवी

कह चकवा
कह चकवी
'कोइ बात कहै, रात कटै।
'घर बीती सुणाऊ कि परबीती।'
'घर बीती तो सदा ही सुणावै, आज पर बीती सुणा।'

नदी के एक किनारे पर रात के समय विरही चकवा था, दूसरे किनारे पर प्यारी चकवी। जुदाई की काली रात काटने के लिए दोनो बाते कर रहे थे। चकवी ने कहा-चकवे। कोई बात कह, जिससे रात कटे, प्रभात हो और हमारा मिलन हो।' चकवे ने कहा- 'घर बीती सुनाऊ या पर बीती।' चकवी- 'घर बीती तो सदा ही सुनाते हो, आज तो पर बीती सुनाओ।'

चकवा- 'प्यारी चकवी। क्या सुनाऊ? लोग गणित मिला रहे हैं, आकडा को जाच रहे हैं। कुनबा डूब रहा है, उसकी फिक्र नहीं। बैठे-बैठे विचार कर रहे हैं-गणित ठीक है, प्रतिशत के हिसाब को जोडे तो सारा कुनबा नदी के पार होना चाहिए। पर-यह डूब कैसे रहा है। ये लोग हैं, अपने को बचाने म लगे हैं। अपने दल की बात कहते हैं, इनको यह पता नहीं है-एक देश भी है, उसको भूल गए हैं।

चकवी- 'कोई उपाय?'

चकवा- 'हा है, इनकी नकेल जनता के पास है। जनता जगे, यही इलाज है। जनता की याद कमजोर है, वह सो जाती है, भूल जाती है। इसीलिए मुट्ठीभर लोग अपना उल्लू सीधा करते हैं। जनमत सदा जाग्रत रहे।'

इतने मे सूरज की सुनहरी किरणे धरती पर आने लगीं। विरही दोनो पख फैला कर मिलनातुर उड चले।

काश-चकवा चकवी की इन बातों को हम सुन, सुनकर जागें और चेते।'

सुविधा - दुविधा रूप

महाभाष्य तिलक के कर्त्ता सस्कृत के प्रकाण्ड पडित कैयट नगर से दूर कुटिया में रहते थे। उनक पास सपत्ति क नाम पर एक चटाई और एक कमडलु था। उनकी पत्नी वन से मूज काट लाती, उनकी रस्सिया बनाकर बेचती और घर का काम चलाती। मागने, दान लेने की मनाही थी।

काश्मीर नरेश को ऐसा मालूम होने पर वे कैयट के पास गए। हाथ जोडकर प्रार्थना की- 'भगवन्! आप विद्वान् हैं। आप जानते हैं, जिसके राज्य मे विद्वान् कष्ट पाते हैं, वह राजा पाप का भागी हाता है। मुझ पर कृपा कर, सेवा का अवसर द।'

कैयट ने कमडलु उठाया और अपनी पत्नी से कहा- 'उठा मेरी पुस्तके, राजा को हम पापी क्या बनावे, और कहीं चले।'

राजा पैरो पर गिर पडा और कहने लगा- 'मैं सेवा करने का इच्छुक हू। आप यहीं रहें।'

कैयट- 'सेवा यही है, फिर कभी मुझे धन, जमीन, सुख का प्रलोभन न दो। मेरे अध्ययन मे विघ्न न हो, यही सेवा है।'

आज भी सरकारे, पार्टिया या विशेष दल अपन लागो को सहायता देती हैं- दूसरे सच्चे लोगो को लाघ कर। पर, नतीजा? जहा सुविधाए जुटाकर साहित्यकारो या कलाकारो का चिता-मुक्त किया, वे प्राय चितन मुक्त हो गए। सुविधा मिले, यह आवश्यक है, पर, सुविधा जब सशर्त हो, दया प्रेरित हो, स्वार्थबद्ध हो तो यह दुविधा है।

इकबाल ने ठीक कहा है-

ए तायरे लाहूती, उस रिज्क से मौत अच्छी
जिस रिज्क स आती हो, परवाज मे कोताही।

-हे आकाश मे स्वच्छद उडने वाल विहगम्!

उस रोटी के बजाय मर जाना बेहतर है,
जिसके कारण उड़ने मे कमी आती हो!

अत करण क्या है?

अपना अत करण शुद्ध रखो। बात ठीक, सवा सोलहवे आना ठीक, शत-प्रतिशत सही। इस भाव को पहले सही रूप मे समझने का सकल्प करे।

अत करण का अर्थ है- भीतर का करण यानी भीतर की इद्रिय। बाहर की इद्रियो को हम आख, कान, हाथ आदि रूप मे जानते हैं, क्योकि ये दीखती हैं और अपना-अपना काम करती हैं। पर अत करण? यह विचार से समझ मे आवेगा।

अत करण के चार रूप हैं- मन, बुद्धि, चित्त और अहकार। इसीलिए 'अत करण चतुष्टय' कहलाता है।

मन मे सकल्प विकल्प उठते हैं, कभी आता है, यह करू, कभी आता है- वह करू। यानी जिसमे उधेडबुन होता है- उसका नाम है- मन। बुद्धि का काम है- निर्णय देना, फैसला देना, 'जजमेट' देना एक 'जज' की तरह न्यायाधीश की तरह।

चित्त तो हमारे सस्कारो और स्मृतियो का खजाना है। 'अहकार' यहा व्यक्ति की पहचान है, अपनी 'अस्मिता' है। यहा यह शब्द घमड के अर्थ मे नहीं है।

अत करण शुद्ध है- इसकी यह कसौटी है- ''शुद्ध अत करण मे बुद्धि आकाशवत् निर्मल, मन गगा सा पवित्र, चित्त बिना हवा मे रखे दीपशिखा की तरह अडोल, स्थिर और अहकार- भगवान् सागर से मिलने के लिए बहने वाला नद हो जाता है।'' गीता-ज्ञान।

जैसे हम प्रतिदिन शरीर को स्वच्छ रखने के लिए स्नान करते हैं, उसी प्रकार अत करण को शुद्ध करने के दो अचूक उपाय हैं- 'प्रतिदिन सत्सग, प्रतिदिन स्वाध्याय'।

सुविधा - दुविधा रूप

महाभाष्य तिलक के कर्ता संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित कैयट नगर से दूर कुटिया में रहते थे। उनके पास संपत्ति के नाम पर एक चटाई और एक कमंडलु था। उनकी पत्नी वन से मूंज काट लाती, उनकी रस्सियां बनाकर बेचती और घर का काम चलाती। मांगने, दान लेने की मनाही थी।

काश्मीर नरेश को ऐसा मालूम होने पर वे कैयट के पास गए। हाथ जोड़कर प्रार्थना की- 'भगवन्! आप विद्वान् हैं। आप जानते हैं, जिसके राज्य में विद्वान् कष्ट पाते हैं, वह राजा पाप का भागी होता है। मुझ पर कृपा करें, सेवा का अवसर दें।'

कैयट ने कमंडलु उठाया और अपनी पत्नी से कहा- 'उठा मेरी पुस्तकें, राजा को हम पापी क्यों बनावें, और कहीं चल।'

राजा पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा- 'मैं सेवा करने का इच्छुक हूं। आप यहीं रहें।'

कैयट- 'सेवा यही है, फिर कभी मुझे धन, जमीन, सुख का प्रलोभन न दो। मेरे अध्ययन में विघ्न न हो, यही सेवा है।'

आज भी सरकारें, पार्टियां या विशेष दल अपने लोगों को सहायता देती हैं- दूसरे सच्चे लोगों को लांघ कर। पर, नतीजा? जहां सुविधाएं जुटाकर साहित्यकारों या कलाकारों को चिंता-मुक्त किया, वे प्रायः चिंतन मुक्त हो गए। सुविधा मिले, यह आवश्यक है, पर, सुविधा जब सशर्त हो, दया प्रेरित हो, स्वार्थबद्ध हो तो यह दुविधा है।

इकबाल ने ठीक कहा है-

ए तायरे लाहूती, उस रिज्क से मौत अच्छी
जिस रिज्क से आती हो, परवाज में कोताही।

-हे आकाश में स्वच्छंद उड़ने वाले विहगम्!

उस रोटी के बजाय मर जाना बेहतर है,
जिसके कारण उड़ने में कमी आती हो'

अत करण क्या है?

अपना अत करण शुद्ध रखो। बात ठीक, सवा सोलहवे आना ठीक, शत-प्रतिशत सही। इस भाव को पहले सही रूप मे समझने का सकल्प करे।

अत करण का अर्थ है- भीतर का करण यानी भीतर की इद्रिय। बाहर की इद्रियो को हम आख, कान, हाथ आदि रूप मे जानते हैं, क्योंकि ये दीखती हैं और अपना-अपना काम करती हैं। पर अत करण? यह विचार से समझ मे आवेगा।

अत करण के चार रूप हैं- मन, बुद्धि, चित्त और अहकार। इसीलिए 'अत करण चतुष्टय' कहलाता है।

मन मे सकल्प विकल्प उठते हैं, कभी आता है, यह करू, कभी आता है- वह करू। यानी जिसमे उधेडबुन होता है- उसका नाम है- मन। बुद्धि का काम है- निर्णय देना, फ़ैसला देना, 'जजमेंट' देना एक 'जज' की तरह न्यायाधीश की तरह।

चित्त तो हमारे सस्कारो और स्मृतियो का खजाना है। 'अहकार' यहा व्यक्ति की पहचान है, अपनी 'अस्मिता' है। यहा यह शब्द घमड के अर्थ मे नहीं है।

अत करण शुद्ध है- इसकी यह कसौटी है- ''शुद्ध अत करण मे बुद्धि आकाशवत् निर्मल, मन गगा सा पवित्र, चित्त बिना हवा मे रखे दीपशिखा की तरह अडोल, स्थिर और अहकार- भगवान् सागर से मिलने के लिए बहने वाला नद हो जाता है।'' गीता-ज्ञान।

जैसे हम प्रतिदिन शरीर को स्वच्छ रखने के लिए स्नान करते हैं, उसी प्रकार अत करण को शुद्ध करने के दो अचूक उपाय हैं- 'प्रतिदिन सत्सग, प्रतिदिन स्वाध्याय'।

सभा मे अमोल बोल

चणक पुत्र चाणक्य, कुटिल नहीं- कौटिल्य यानी कुटिलता वाले नहीं- वे थे कौटल्य। एक धर्ममय राजनय के धुरधर पडित। भीतर से नि स्पृह, करुण, बाहर से कठोर। नारियल जैसे। उन्हाने कथन का एक स्वर्ण सूत्र दिया है-

"ससदि शत्रु न परिक्रोशेत्।"

'सभा मे शत्रु की भी निदा न कर।' अपनी बात रखे, तर्क से युक्त कर प्रमाणो से पुष्ट कर रख, स्पष्टता और प्रखरता से रखे। सद्भाव व लोकमगल के साथ रखे। भावुकता के साथ बुद्धि से मर्यादित वाणी बोले। ऐसा बोलें कि विमत वालो को भी सहमत होने को मजबूर होना पडे।

महाभारतकार ने यह भी कहा है- 'वाक्शल्य मनसो जरा।' मर्म भेदी काटे की तरह नुकीली चुभने वाली भाषा-मन का बुढापा है।

'जो गुड दीन्हे ही मरै, माहुर काहे देय।' जो गुड देने से मरता है, उसको विष क्यो दिया जाए।

सभा वह है, जिसमे वृद्ध हो, वृद्ध वह है- जो सत्य बोले, सत्य वह है- जो छलबिद्ध न हो। यानी निरछल सत्य जहा उच्चरित हो, उसी मे सभा के सदस्यो, सभ्यो या सभेयो की शिष्टता व शालीनता है।

गूंगे का गुड़

सागर के किनारे भीड है। सवाल है- सागर अथाह है या नहीं है। बडे-बडे नामी पडित वाद-विवाद में लगे हैं। एक पडित ने कहा- 'सागर अथाह है।' दूसरे ने कहा- 'क्या आपने मापा है, डुबकी लगाकर देखा है?' जो ये कहते हैं कि सागर अथाह है, वे भी किनारे पर बैठे हैं और जो यह कह रहे हैं कि अथाह कैसा- इसकी थाह ली जा सकती है वे भी किनारे पर बैठे हैं।

इस वाद-विवाद से ऊबकर अचानक दो नमक के पुतले उठ खडे हुए और कहने लगे- 'आप रुकिए, हम लगाते हैं- डुबकी। पता लगाकर सही खबर देंगे।' दोनो नमक के पुतले सागर मे कूद पडे। वे नीचे उतरते गए, घुलते गए और अत मे घुलकर सागर में एकाकार हो गए।

किनारे पर खडे पडित इतजार करते रहे, भीड जमी रही। पर, आज तक पुतले नहीं लौटे, कौन जवाब दे। पुन पडित विवाद मे उलझ गए।

असल में जो बोलते हैं, उन्हे अनुभव नहीं, जिन्हें अनुभव है- वे बोलते नहीं।

यही है- अकथ कहानी। 'गूगे केरी सरकरा खाए औ मुस्काय।' यह अनुभव 'गूगे का गुड' है, बस, मौन जितना कह दे। यो यह शब्दातीत- शब्दों से परे है। केवल मात्र अनुभव गम्य।

इस सत्य की घोषणा है-

जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी बूड़न डरी, रही किनारे बैठ॥

सभा मे अमोल बोल

चणक पुत्र चाणक्य, कुटिल नहीं- कौटिल्य यानी कुटिलता वाले नहीं- वे थे कौटल्य। एक धर्ममय राजनय के धुरधर पडित। भीतर से नि स्पृह, करुण, बाहर से कठोर। नारियल जैसे। उन्होने कथन का एक स्वर्ण सूत्र दिया है-

"ससदि शत्रु न परिक्रोशेत्।"

'सभा मे शत्रु की भी निदा न करे।' अपनी बात रखे, तर्क से युक्त कर प्रमाणो से पुष्ट कर रखें, स्पष्टता और प्रखरता से रखे। सद्भाव व लोकमगल के साथ रखे। भावुकता के साथ बुद्धि से मर्यादित वाणी बोलें। ऐसा बोलें कि विमत वालो को भी सहमत होने को मजबूर होना पडे।

महाभारतकार ने यह भी कहा है- 'वाक्शल्य मनसो जरा।' मर्म भेदी काटे की तरह नुकीली चुभने वाली भाषा-मन का बुढापा है।

'जो गुड दीन्हे ही मरै, माहुर काहे देय।' जो गुड देने से मरता है, उसका विष क्यो दिया जाए।

सभा वह है, जिसमे वृद्ध हो, वृद्ध वह है- जो सत्य बोले, सत्य वह है- जो छलबिद्ध न हो। यानी निश्छल सत्य जहा उच्चरित हो, उसी मे सभा के सदस्या, सभ्यो या सभेयो की शिष्टता व शालीनता है।

गूंगे का गुड़

सागर के किनारे भीड है। सवाल है- सागर अथाह है या नहीं है। बडे-बडे नामी पडित वाद-विवाद में लगे हैं। एक पडित ने कहा- 'सागर अथाह है।' दूसरे ने कहा- 'क्या आपने मापा है, डुबकी लगाकर देखा है?' जो ये कहते हैं कि सागर अथाह है, वे भी किनारे पर बैठे हैं और जो यह कह रहे हैं कि अथाह कैसा- इसकी थाह ली जा सकती है वे भी किनारे पर बैठे हैं।

इस वाद-विवाद से ऊबकर अचानक दो नमक के पुतले उठ खडे हुए और कहने लगे- 'आप रुकिए, हम लगाते हैं- डुबकी। पता लगाकर सही खबर देंगे।' दोनो नमक के पुतले सागर में कूद पडे। वे नीचे उतरते गए, घुलते गए और अत में घुलकर सागर में एकाकार हो गए।

किनारे पर खडे पडित इतजार करते रहे, भीड जमी रही। पर, आज तक पुतले नहीं लौटे, कौन जवाब दे। पुन पडित विवाद में उलझ गए।

असल में जो बोलते हैं, उन्हे अनुभव नहीं, जिन्हें अनुभव है- वे बोलते नहीं।

यही है- *अकथ कहानी।* '*गूंगे केरी सरकरा खाए औ मुस्काय।*' यह अनुभव 'गूगे का गुड' है, बस, मौन जितना कह दे। यों यह शब्दातीत- शब्दो से परे है। केवल मात्र अनुभव गम्य।

इस सत्य की घोषणा है-

जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी बूडन डरी, रही किनारे बैठ॥

सवाल कम - उत्तर बेशुमार

ससार मे सवाल कम है, पर उत्तरो की भरमार है। यही उलझन है। बीमारी एक है, दवाइयो का अत-न-पार। एक सवाल आता है, जवाब मिलता है। फिर वह जवाब नई-नई उलझने पैदा करता है, नए छोटे-छोटे सवाल उभरते हैं और उत्तरो की तलाश।

कभी-कभी एक प्रश्न ऐसा होता है-जिसका ससार भर में एक निश्चित, सर्वाधिक सुदर और समाधान जैसा उत्तर मिलता है। यद्यपि उस उत्तर से पूरे तौर से हम सतुष्ट नहीं हो पाते, फिर भी प्राप्त उत्तरो मे वह सबसे अच्छा लगता है। अत उस उत्तर के इर्द-गिर्द हम ठहरे-किसी नए अच्छे की आशा मे रहते हैं। सग्रह, फिर त्याग और फिर सग्रह यही सिलसिला चलता है। जनाब जानिसार अख्तर ने सही फरमाया है।

समझ सको तो समझो जिदगी की उलझन को।
सवाल इतने नहीं जवाब जितने हैं।

शताब्दियो के लबे अनुभवो से गुजरकर हमने पाया कि मनुष्य की महिमा को उजागर करने के लिए शाति व सुव्यवस्था के लिए लोकतत्र सबसे उम्दा शासनतत्र है। जहा प्रत्येक व्यक्ति को सर्वोच्च बनने का हक हासिल है। पर इस जम्हूरियत (लोकतत्र) के तर्जे हकूमत मे एक दोष है-जहा बदे गिने जाते हैं, तौले नहीं जाते।

जम्हूरियत इक तर्जे हकूमत है-जिसमे-
बदों को गिना करते हैं, तौला नहीं करते।

-इकबाल

बदो को तौले तो इसमें तानाशाही का खतरा है, इससे छुट्टी पाने के लिए बदो को गिनें तो भीडराज हो जाता है। अभी तो हम चुनाव करते हैं-दो बुरो के बीच कम बुरे का। यही नियति है। फिर भी आशा करते हैं-भविष्य में किसी निभ्रन्ति सर्व सुखकारी उत्तर की।

एकला चलो रे

एक दिन एंजिन ने अपनी मनोव्यथा को अपने साथी धुए के सामने प्रकट किया-

'मित्र, कैसे बताऊ! अपनी घुटती अत पीडा को, मेरे साथी ये डिब्बे कितने निकम्मे हैं। मैं जब ऊपर चढता हू, ऊचा उठता हू तो ये पीछे-नीचे की ओर खींचते हैं। मैं बडी मुश्किल से चढ पाता हू और चढते-चढते हाफ जाता हू।

और जब मैं नीचे ढलान की ओर गिरने को होता हू तो ये अपना सारा वजन मुझ पर डालकर नीचे यो धकेलते हैं जैसे मैं इनका दुश्मन हू। बडी मुश्किल से मैं सभल पाता हू।

एंजिन सबल वीर, धूम से कहत बात।
डिब्बे मुरदार यार, पीछे पड़े मेरे है।

– कवि प्रेमघन

सच्चे अनुयायी कब मिलते हैं, कहा मिलते हैं। कभी-कभी किसी बुद्ध को सारिपुत्र या मौदगल्यायन जैसे शास्त्रों को गभीर विद्वान् व मनीषी व आनद जैसे काया से छाया जैसे एकाकार सेवक मिलते हैं और मिलते हैं तीर्थंकर महावीर का गणधर गौतम जैसे सिद्ध ज्ञानी ध्यानी। अन्यथा-एंजिन और डिब्बा का खेल चलता है।

तभी शायद कहा गया है-
'एकला चलो रे।'

मिलते हैं - पर, भीतर फार्कें तीन

गीदड ने ऊट से कहा- 'मित्र! इधर खाने पीने की बडी तगी है, नदी के उस पार हरे भरे खेत हैं मुझ इसकी पुख्ता खबर है। तुम मुझे अपने ऊपर चढा कर ले चलो। नदी पार हम दोनों मजे में छक कर पेट भरेगे।'

ऊट ने गीदड का कहना मान लिया।

दोनों नदी के पार पहुचे। सचमुच चारों ओर हरेभरे खेत थे। थोडी देर मे गीदड का पेट भर गया।

गीदड- 'ऊट भैया! मेरा पेट भर गया। अब मुझे तो 'हुकहुकी' लगी है- बोले बिना नहीं रहा जाता।'

ऊट- 'अरे! बोलना नहीं, मेरा तो पेट भरा ही नहीं है। तेरी आवाज को सुनकर, रखवाले दौडे आवेंगे और हमारी हड्डी पसली तोड देंगे।' पर, गीदड नहीं माना। वह मस्ती में जोर से आवाज करने लगा। रखवाले दौडकर आए। गीदड तो भाग कर छिप गया। ऊट की गहरी मरम्मत हुई और उसे मारपीट कर नदी की ओर खदेड दिया। गीदड वहीं छिपकर बैठा था।

ऊट ने उसे बिना बोले अपनी पीठ पर चढा लिया। नदी के बीच मे जब ऊट पहुचा तो कहने लगा, 'मुझे अभी 'लुटलुटी' आ रही है, इसलिए मैं तो लोटूगा।' गीदड ने बहुत मना किया, पर, ऊट का एक ही उत्तर था- 'तनै हुकहुकी आवै तो मनै लुटलुटी आवै'- तुमसे बोले बिना नहीं रहा जाता, तो मुझसे लोटे बिना नही रहा जाता।

हम भी मतलब से यों ही मिलते हैं- खीरे की तरह, पर भीतर फार्कें तीन।' पता नहीं- कौन बोलेगा और कोन लोट पोट होगा। किसके मार पडेगी और कौन डूबेगा!' मतलब की मनुहारें हैं- सारी!

संभावनाओं की आहट

चारों ओर शोर है। हम इस समय देखते ज्यादा हैं, सुनते ज्यादा हैं। कभी दूरदर्शन और कभी आकाशवाणी, इसी में हमारे जीवन के अमूल्य घंटे बीतते हैं। स्वय सोचने, विचारने का समय हमारे पास नहीं के बराबर हो रहा है। इस प्रकार हम बाहर रहते हैं, खोए रहते हैं, गायब रहते हैं।

पर, हम कहा सुनते हैं- सभावनाओं की आहट। इतने शोरगुल के बीच, तुमुल कोलाहल के बीच, कभी-कभी सभावना के सुरीले स्वर भी बजते हैं। जो हमें कहते हैं- 'उठ! जाग!' पर, हम मोह-मदिरा में धुत्त रहते हैं।

निर्झर युग-युग से पहाडो के प्रस्तरों में सोया पडा है, एक दिन चिडिया की मीठी चहचहाहट न जाने कैसे पाषाण छिद्रों से झरने ने सुनी। उसका स्वप्न टूटा और वह सागर से मिलने चल पडा। झरना जब चल पडा, तब पता चला उसे अपने प्रचड वेग की अपनी अदम्य शक्ति का, पहाडों की चट्टानों को तोडने वाली शक्ति का।

ऋषि वाणी में सभावनाओं की आहट, हम जरा सुनें- 'आत्मान विद्धि' अपने को जान, अपने को पहचान। अपनी अनत शक्तियो को पहचान।

दो अखूट तरकश

भगवान् राम तापस वेश बना वन यात्रा पर जाने को हैं। उन्होने अनुज लक्ष्मण से कहा- 'रथ में अक्षय बाणो वाले दो तूणीर (तरकश) रखना।' और भी आयुध रखे गए। पर ये दो तरकश, जिनमे रखे गए बाण अखूट हैं। हमारे लिए मिथक से लगते हैं। पर, मिथक गहराई में सच्चाई लिए होती है।

नगे पैर, बिना कवच पहने राम- जब रावण से युद्ध करने चले हैं तो विभीषण घबराया। कहने लगा- 'आप बिना रथ के और रावण हैं- रथी। कैसे लडेगे?' राम ने कहा- 'सखे। मेरे पास भी चरित्र का, धर्म का, रथ है- विश्वविजयी रथ- जिसके दो पहिए हैं- शौर्य के और धैर्य के।' इस प्रसग मे तरकश का रूपक भी आया है। मेरे पास दो त्रोण (तूणीर, तरकश) हैं- ''अमल अचल मन त्रोण समाना।''

असल मे हमारे पास यदि 'निर्मल मन हो, मानसरोवर सा, अचल मन हो, पहाड सा, ऐसे तरकश को लेकर हम जीवन मे किसी भी समस्या के सामने अभय होकर खडे हो सकते हैं। ऐसी राम-बाण-औषध के सामने कोई भी बीमारी कैसे टिक सकेगी।'

खुदा की सेवा करते तो -

मिस्र दश में जुलनून नाम का एक नामी फकीर था। उसके पास एक वजीर गया और वह आशीर्वाद माग कर कहने लगा-

'मैं रात-दिन बादशाह को खिदमत करता हू, क्योकि उनसे पाने की आशा है। साथ हो उनके कोप से डरता भी रहता हू ।'

जुलनून ने उसे इतना ही कहने दिया और बीच म रोक कर, टोक कर कहा-

'तुम बादशाह की लोभ से और साथ ही डरकर जितनी सेवा करते हो, अगर तुम उतने ही सेवा खुदा की करते तो तुम्हारी गिनती साधुआ मे हाती और तुम फरिश्ता तक बन जाते।'

गर न बूदे उमेद राहतो रग।
पाये दर्वेश बर फलक बूदे॥

अगर इनाम की आशा नहीं होती तो फकीर का कदम देवलोक म पहुच जाता और वजीर जितना बादशाह से डरता है, उतना ईश्वर से डरता, ता स्वर्ग का दूत बन जाता।

जीत भी दु ख, हार भी दु ख

कोशल नरेश प्रसेनजित् काशी के लिए अजातशत्रु से तीन बार हार गए। प्रसेनजित् ने हार कर पीडा के मारे कहा- 'मैं दुधमुहे बालक को भी हरा न सका, मुझे धिक्कार है।' खाना पीना अच्छा न लगा और व्याकुल हो बिछावन पर लेट गए।

भिक्षुओ ने इस बात को भगवान् से कहा। शास्ता ने कहा- 'भिक्षुओ। व्यक्ति जीत कर बैर को बढाता है और हार कर दु ख के साथ तडपता, सोता है। ऐसी लडाई हार और जीत दोनो में एक-सी विष फैलाती है। लेकिन जिसके राग-द्वेष दोनो शात हैं, वही जय पराजय को छोड सुख से सोता है।'

यह कह कर गाथा कही-

जय वेर परवति दुक्ख सेति पराजितो।
उपसतो सुख सेति हित्वा जय पराजय॥

- विजय बैर को उत्पन्न करता है, पराजित पुरुष दु ख की नींद सोता है। किन्तु राग आदि दोष जिनके शात हैं, वह पुरुष जीत-हार को छोड सुख की नींद सोता है।

श्रवण - कला

हम चाहते हैं, सामने वाला इस पर रीझ जावे। तो रिझाने का एक सरल उपाय है। हम जीवन मे पहले सुनने की कला सीखे।

बस, आप कुछ न करे, कुछ न कहे। केवल सामने वाले की बात सुने। ध्यान से सुन। सरल बन कर सुने। मुग्ध होकर सुने। सूक्ष्मता से सुने। सावधान होकर सुने। समझदारी से सुने। आश्चयचकित होकर, विस्मय और आनद से विस्फारित नयनो से मोहित होकर सुने। बीच-बीच मे अपने उल्लास की व्यजना करे - ऐसा लगे जैसे आप ने सुन कर सामने वाले के गौरव मे वृद्धि की है।

यह चाटुकारिता नहीं - यह श्रवण का कौशल है। आप बाह्य रूप से मौन हैं - पर, आज आपने चुप रह कर सुन कर, जो बात की है, उसका प्रभाव यह पडा है कि वक्ता आप पर मोहित हो गया है। ऐसी मनोहर ढग की बातचीत करना भी हम सीखे।

पर, हम सुनते कहा है। बीच बीच मे आधी सुन कर, अपनी हाकते हैं टोकते हैं, रोकते हैं - कोरा खडन करते हैं और अपने को हावी करने में लगे रहते हैं।

श्रोता का धैर्य-वक्ता के लिए मुग्धकारी है। इस सुखद श्रवण कला का प्रयोग कर आपने वक्ता को सदा के लिए अपना बना लिया है।

स्वावलम्बन

ग्रीस में किलेंथिस नामक एक युवक एथेस के तत्त्ववेत्ता जीनो की पाठशाला मे पढता था। किलेंथिस बहुत गरीब था। उसके शरीर पर पूरे कपडे भी नहीं थे। पर, पाठशाला की प्रति दिन की फीस नियमित दे देता था। वह पढने मे तेज था, इसलिए दूसरे विद्यार्थी ईर्ष्या करते थे। कई लोगो को सदेह था कि वह जो फीस देता है, कहीं से चुरा कर लाता है।

एक बार उसे चोर बतला कर पकडवा दिया। मामला अदालत मे गया। किलेंथिस ने निर्भयता के साथ हाकिम से कहा – 'मैं चोर नहीं हू। निर्दोष हू। मुझ पर यह झूठा दोष लगाया गया है।'

गवाह बुलाए गए। पहला गवाह माली था। माली ने कहा – 'यह प्रतिदिन मेरे बगीचे मे आकर कुए से पानी खींचता है। मैं प्रतिदिन मजदूरी मे कुछ पैसे देता हू।' दूसरी गवाही थी – एक बुढिया की। उसने कहा – 'मेरे घर म कोई पीसने वाला नहीं है। यह युवक प्रतिदिन मेरे घर मे आटा पीसता है। बदले मे मजदूरी के पैसे ले जाता है।'

इस नेक कमाई की बात सुनकर हाकिम बहुत प्रसन्न हुआ और पढाई की सारी व्यवस्था के लिए सहायता देनी चाही। पर, वह छात्र तैयार नहीं हुआ। कहने लगा – 'धन्यवाद। आपकी उदारता के लिए। मैं परिश्रम करके ही पढना चाहता हू। किसी से दान लेने की मुझे आवश्यकता नहीं है।'

स्वावलबन के इस आदर्श से हम क्या कुछ सीख सकते हैं। शायद 'हा'। पर, अभी नहीं – क्याकि अभी तो हम सहायता को – प्राय कर्ज को – लाभ समझ कर 'स्वावलम्बन' को बिसर गए हैं।

वाह! साई वाह!!

जीवन मे शिकायते हैं, सुविधाओ की माग हैं, उलहनो की भरमार है। पर, कोई है-जिसने केवल इतना ही कहना सीखा, वाह! प्रभो! वाह! क्या दुनिया बनाई है। कैसी सुरगी दुनिया! बिना मागे इतनी विशाल धरती, इतनी हवाए, इतना बडा आसमान दिया। बारह महीने, सभी अपने ढग के निराले, 'वाह साईं, वाह।'

ऐसे व्यक्ति को कौन दु खी बना सकता है। जिसकी एक ही प्रार्थना है, एक ही रट है-'वाह प्रभो। वाह। धन्यवाद प्रभो।'

आषाढ महीना है -

'साड महीना। बिरखा लागी, बाजरियारी वाह।
माऊजी म्हारै भातो लावै, वाह रे साई वाह!

पर, भयकर जेठ के महीने की गर्मी की भी शिकायत नहीं करता।

जेठ महीने धूप पडैली, तावड़ियेरी ताह।
खेजड़ चढ्र 'र खोखा खासा, वाह रे साई वाह।

-आषाढ मास मे वर्षा ऋतु लगी। बाजरे की बोआई होने लगी। मेरी माता मेरे लिए छाक लाती है। धन्य, प्रभो, तुमको धन्यवाद।

-जेठ मे कडी धूप पडेगी-बडी करारी धूप।
खेजडे पर चढ कर खोखे (फली) खावेगे।
धन्य, धन्य प्रभो।

पर, हमारी मागे अनत, शिकायते अखूट। कोई हमारे लिए गर्दन भी काट कर रख दे तो कहेगे 'जरा टेढी कटी है।' न धन्यवाद, न आभार न एहसान और न कृतज्ञता का विनम्र स्वर! मागे वाजिब पर कभी-कभी किसी के लिए 'धन्य! धन्य!' भी निकले। सतुलन तो बनाना चाहिए।

शील – चरित की कुजी

सच्चरित्रता सबधी जितने भी शब्द हैं, उन सब का मूलाधार शील है। शील का अर्थ है, शुचिता, विनम्रता, करुणा, सेवा। यानी जीवन के नैतिक आदर्श – जब सहज, स्वभावगत हो जाए – तब शील शब्द सार्थक होता है।

एक बार प्रह्लाद के पास 'शील' उपस्थित हुआ, उसने कहा – 'मैं आपके यहा से जाना चाहता हू।' प्रह्लाद ने सोचा – 'क्या फर्क पडता है, मुझमे सत्य, दया, दान आदि शतश सद्गुण हैं – एक चला भी जाए तो कोई हर्ज नहीं।' जैसे शील जाने लगा – इतने मे 'सत्य' कहने लगा – मैं जा रहा हू – इसी प्रकार अहिसा, दानशीलता आदि गुण निकल निकल कर जाने लगे। तब प्रह्लाद ने चिल्ला कर कहा – 'शील! आप न जाए, मैं आप से खाली होकर सारे गुणा से शून्य हो जाऊगा।' शील की रक्षा जीवन के सद्गुणो की रक्षा है।

यदि हम मे शील है तो आग पानी बन जाती है, उफनता सागर नहर बन जाता है, मेरु शिला की तरह, सिह हरिण की तरह, व्याल माला की तरह हो जाता है। यानी शीलवान् के लिए कहीं पर भी बाधाए नहीं। चारो ओर मैत्री, सहयोग और सम्मान का वातावरण शील का स्वागत करता है। शील के सम्मुख विष भी अमृत बन बरसता है।

विष रस पीयूष वर्षायते

यदि हम मे कोई अच्छा गुण है, उसकी हमे चेतना है, उसका गर्व है और उस सद्गुण का व्यवहार हम कभी-कभी करते हैं और जीवन भर उसका बखान करते हैं तो यह सद्गुण – अभी दुर्गुण से बहुत ऊचा नहीं उठा है।

यह शील बने – यानी स्वभावगत सहज बने। इसीलिए शील की महिमा है।

हिम्मते मर्दा मददे खुदा

एक सियार ने कहीं से सुन लिया – 'हिम्मते मर्दां मददे खुदा।' वह सियारिन से भी यही कहता था। सियारिन जब गर्भवती हुई तो कहने लगी, 'कहीं सुरक्षित जगह चले।' सियार सियारिन को लेकर इधर उधर घूमा और अत म उन्होने एक खोह मे रहना शुरू किया। वह खोह सिह की गुफा थी। सिह कहीं दूर निकल गया था। इधर सियारिन ने वहा बच्चे प्रसव किए।

कितने ही दिना बाद सिह अपनी गुफा की तरफ आया और दहाड लगाने लगा। सियार काप गया। सियारिन ने कहा – 'हिम्मते मर्दां का मौका है।' सियार सभला। बाहर आया और टागे ऊपर कर गुफा के बाहर जम गया। सिह को देखकर उसने कहा – 'अरी वन कूकरी। क्या चाहती है?' 'अरे जग के बैरी। मैं सिह को खाना चाहती हू।' सिह ने यह बात सुनी और उसने ऊपर टाग किए विचित्र जानवर को देखा। वह भाग खडा हुआ। बदर ने सिह को समझाया – 'यह सियार है।' सिह बडी मुश्किल से बदर के साथ आया। सियार – 'अरी। वन कूकरी। क्या चिल्ला रही हो?' सियारिन – 'जल्दी लाओ, सिह का मैं कलेवा करूगी।' यह सुनकर सिह भाग खडा हुआ। बदर इस बार सिह को समझा कर फिर ले आया। दोनो ने अपनी पूछ बाध ली – ताकि कोई भागे नहीं।

सियार ने इस बार हिम्मत के साथ धीरज से काम लिया। सियार – 'अरी वन कूकरी। बच्चे क्या रोते हैं?' सियारिन – 'सिह को खावेगे देरी होने के कारण रो रहे हैं।' सियार – 'डर मत, इस बार मैंने बदर को लाने भेजा है, वह अपनी पूछ से बाध कर सिह को ला रहा है।' सिह ने बदर की चालाकी भाप ली, इसलिए वह एक झटके से अपनी पूछ को छुडाकर तेजी से भाग खडा हुआ।

यह दृष्टात है – इसका दार्ष्टांत है – हम यदि हिम्मत और धीरज से काम ले तो अपने कठिन लक्ष्य को भी प्राप्त कर सकते हैं।

ढोंग - आखिर कब तक?

एक जहाज पर कौवा था। जहाज एक द्वीप के पास टूट गया। कौवा उडा-उसने द्वीप मे पक्षियो का झुड देखा। वहा अभी तक कौवा पहुचा नहीं था। कौवे ने वहा पर पक्षिया के बच्चे और अडे खाने का मन बनाया। वह पक्षियो के पास एक पाव से खडा हो गया। पक्षिया ने एक नए तरह का पक्षी देखकर पूछा -

'आप कौन हैं?'

'मैं धार्मिक हू।'

'आप एक पाव से खडे क्यो हैं?'

'मैं तप करता हू। दूसरा पैर धरती पर रखूगा तो यह धरती बोझ के मारे दब जाएगी।' पक्षी चकित होकर पूछ बैठे - 'आप अपनी चाच खुली क्यो रखते हैं?'

'मैं और कुछ नहीं खाता। हवा खाकर व्रत करता हू।' सभी पक्षी कौवे की बात सुनकर बडे प्रभावित हुए। अपने वश मे ऐसा नया पक्षी देखकर गर्वित हुए।

वे सब पक्षी-कौवे की बाता के झासे मे आकर-उसे विश्वस्त समझकर अपने अडे बच्चो की रखवाली करने छोड जाते। एक चतुर पक्षी ने साचा-हमारे बच्चे और अडे कम कैसे हो रहे हैं। एक दिन वह जल्दी आकर-छिपकर बैठ गया। उसने उस धार्मिक बने ढागी कौवे की काली करतूत दखी। जब पक्षी साझ को लौट आए तो उनको उस पक्षी ने सारी बाते कह सुनाई। सारे पक्षी समझ गए और उस कौवे को मार-मार कर अधमरा कर दिया।

धर्म म ढाग चलता है और वह उधडता-खुलता भी है। 'उघरेउ अत न हाइ निभाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।'

ऐसे धर्म-ध्वजी (ढागी) गावा मे घुस जाते हैं। उनको मूर्ख नहीं पहचान पाते। पर, सयानो का यह दायित्व है कि धर्म म ढाग को न चलने द।

मन ही गोरखनाथ

कमजोरो के लिए पत्थर मार्ग का रोडा है,

पर, बलवानो के लिए वही ऊपर चढने की सीढी है।

यह चमत्कार मन का है, केवल मन का है। मन हमारे लिए बाधक है, पर यही साधक भी है। मन मे मस्ती आ जावे तो यही गोरखनाथ है। 'मन ही गोरखनाथ।'

मन बाधक है, मन ही समझाता है। जब मन मे बुलदी आ जावे तो यही उद्बोधक बनता है।

इसीलिए कहा है – 'मन एव मनुष्याणा कारण बन्ध मोक्षयो ।'

सारा इतिहास इतना ही है–

'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।'

मन हमारा मीत है, इसे यदि हम आदर दे, सत्कार दे तो यही मन ज्योतिया की ज्योति है। यही देवता है और यही मगलमय कार्यों का प्रेरणा स्रोत। 'तन्मे मन शिव सकल्पमस्तु' ऐसा मेरा मनोदेवता शुभ सकल्प वाला हो।

प्रश्न-स्वधर्म का

प्रभात का सुनहरा वातावरण। शीतल वायु के झोको मे एक फूल झूमता, मस्ती मे मुस्कराता था।

वह मदोन्मत्त सा हवा से कहने लगा - 'प्यारी हवा! तुम्हारा हमारा पुराना रिश्ता है। मुझे अपने नीचे का तना-जो बहुत कडा, खुरदरा, ठूठ सा है-कतई पसद नहीं।'

हवा - 'तुम दूसरे की बात मत करो। यह तना कडा नहीं होता, तो कहा से आता तू! इस कडाई पर ही तेरी कोमलता है।'

फूल ने जैसे सुना ही नहीं, कहता गया - 'और सुना है, तने के नीचे जडे हैं - जो धरती में पसरी, केवल चूसती है, लेती ही लेती हैं - कहा मैं - दानी, सुरभि लुटाने वाला।'

हवा - 'पल भर मे झरने वाले नासमझ! ये जडे हैं, उनका धर्म है - सचय करना - यदि ये तेरी तरह देना शुरू कर दे तो फिर न तना और न तू।'

फूल समझ नहीं पाया।

प्रश्न स्वधर्म का है 'इसी पर विश्व की व्यवस्था है। बगीचा है - फूली फलो से लदा' पर, उसके चारो ओर कटीली बाड! कहा काँटे, कहा फूल फल! कितने दूर, फिर भी कितने पास!

इसलिए गुलशन मे काटो की जरूरत है।
सैयाद ने चुपके से कलियो को मसल डाला॥

पक्के चेले कहां!

जब कोई संत के पास चेला बनने जाता तो वह कहता – नरसी मेहता की वाणी मे,

भूमि सुलाऊ भूखो मारू तिस पर मारू मार।

इसके बाद बी जो हरि भजे तो कर दू निहाल॥

सुनते ही 'परसादिये भगत' (प्रसाद लोभी नामधारी भक्त) भाग खडे होते।

एक चेला मिला पक्का! संत से कहा – 'मैं तैयार हू'।

संत – 'इसका अर्थ समझ ले पहले! देख, एक दिन सब मरेंगे, जमीन पर लेटेंगे, ससार के सारे सबध टूटेंगे, इसलिए यदि चेला बनना हो तो मैं मरने के पहले मरा हुआ बनाऊगा – यानी दुनिया के सारे मोह बधन तोडने होंगे। भूखो मारने का मतलब है – कंचन कामिनी के साथ कीर्ति की भूख भी त्यागनी होगी। इस पर भी साधना मे गलती करेगा तो यहा माफी का नाम नहीं, मार पर मार पडेगी, फिर भी तलवार की धार पर चलना पडेगा, बिना डिगे।'

पर, कहा टिकते हैं, इस पर चेले! महाप्रज्ञ प्रज्ञाचक्षु बिरजानद को मिला – दयानद और परमहस को मिला – भावी विवेकानद! काश, एक आध और भी मिले।

उत्तेजना नहीं, उत्साह

उत्साह के गुण हैं, पर, उत्तेजना जीवन को गडबडा दती है। अधीरता या व्यग्रता चरित्र की दुर्बलता है। जल्दी-जल्दी बोलना, हर काम मे बिना विचारे कूद पडना, छोटी-छोटी बातो मे दुविधा म पडना - मन की चचलता है।

किसी ने कहा - तुम्हारा कान कौवा ले गया तो कान को टटोले बिना कौए के पीछे दौडना, अधेरे मे चौंकना गाडी रुकने के पहले अधीर होकर उतरना, बेमौके ठहाका मारना और निराधार शकाए करना - बिखरे व्यक्तित्व के लक्षण हैं।

जरा सी बात पर मुग्धता - हमारी दुर्बलता है। आदर मिला कि गद्‌गद्। एक पान किसी ने खिला दिया तो दिल दिमाग उसके हवाले। चिकनी चुपडी बातो पर रीझ गए।

क्र

कटुभापिता, कुतर्क, तुच्छ चर्चा, धृष्टता पूर्वक झूठ बोलना - ये हमारी दुर्बलता के चिह्न हैं।

हम केवल उन बातो को अपने हृदय मे लावे, जो सतुलन, शाति, सौरस्य और आनद को सग लाती हो। धीरज, समझदारी, विवेक और विश्वास - ये जीवन के सकारात्मक पहलू हैं।

जीवन - एक व्यवस्था

'लिखत सुधाकर लिखिगा राहू।' महारानी कौसल्या की भावना सही है, सुना था पुत्र राम का युवा राज्याभिषेक और मिल गया, चौदह वर्ष का वनवास। विधाता लिख रहा था चद्रमा और लिख गया राहू। विपरीत स्थिति मे कौसल्या की यह अनास्था स्वाभाविक है। हस सुने जाते हैं, मिलते हैं बगुले। अमृत का नाम ही नाम है, मिलता है विष।

यह नियति है। यह अदृष्ट है या यह जीवन का कार्यकारण विहीन केवल अध प्रवाह है, जीवन लगता है - जैसे एब्सर्ड है।

लेकिन, हमारी आस्था कहती है, सृष्टि के प्रवाह मे एक नियम है, एक मर्यादा है, एक ऋत है। ऋत का अर्थ है - ब्रह्माड के सचालन मे, गतिशीलता मे, एक शृखला है।

विज्ञान उसी का विश्वासी है और सृष्टि की उस नियम-शृखला की तलाश मे लगा है। धर्म उसे आचार कहता है, उसी को व्याख्यायित करता है। राजनीति उसे वादो का रूप देती है। समाज मर्यादा बनाता है और व्यक्ति उसे अनुशासन के रूप मे विकसित करना चाहता है।

नदी का स्वभाव धीर बन बहना और सागर तक की यात्रा पूरी करना है। बाढ उसका स्वभाव नहीं, आपद् धर्म है।

अभी मजिल कहाँ!

'भगवन्! हम जहा भी जाते हैं, हमें निदा और प्रशसा दोनो सुनने को मिलती है। जब कोई निदा करता है तो हमे क्रोध आता है और प्रशसा सुनकर खुशी होती है। क्या यह स्थिति साधना के मार्ग मे रुकावट है?'

'सौम्यो! यह मानसिक स्थिति इस बात का प्रमाण है कि अभी तुम लोग प्रतिक्रिया से छूट नहीं पाए। तो सुनो, पथ को पहचानो।'

जब कोई निदा करे तो सुनो, पूरा सुनो। आवेश रहित होकर सुनो। निदा की परीक्षा करो। वह यदि झूठी है तो कहो, 'यह दोष हममे नहीं, आप फिर विचारे। आपने हमे देखा, हम इस कृपा के लिए आभारी हैं। हमारे दोष कौन बतलाएगा।' यदि दोष हो तो स्वीकार करो और कहो '– कोशिश कर रहे हैं – इन्हे दूर करने की, हम तो अभी साधक हैं। आप चेताते रहिए।'

यदि प्रशसा सुने तो विचारे, 'ये गुण हममे नहीं है, अत प्रशसा को उपदेश समझे। मानो – ये प्रशसा नहीं कर रहे हैं, हमे उपदेश दे रहे हैं। यदि प्रशसा सही लगे तो समझो – इतना पथ तय किया है, पर अभी मजिल कहा!'

"चार डग हमने दिए तो क्या हुआ,
है अभी मैदान कोसो ही पडा।"

सभी को रात दिन निदा प्रशसा से अपने-अपने दायरे मे गुजरना पडता है, उस समय उक्त चितन हमे राह बता सकता है।

चितन मनन

अच्छा सदा प्राप्त

एक राजा के प्रश्न थे-१ सबसे अच्छा समय कौन-सा है? २ सबसे अच्छी जगह कौन-सी है? ३ सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति कौन है? ४ सबसे अच्छा काम कौन-सा है? इन प्रश्नो का उत्तर पाने के लिए राजा ने जगह-जगह जाकर द्वार खटखटाए, पर कहीं सतोषजनक उत्तर नहीं मिले।

अत मे वे एक महात्मा के पास गए। वे उस समय एक वृक्ष को पानी देने मे लगे थे। राजा ने प्रणाम किया। सत ने स्वीकृतिसूचक मुद्रा बनाई और अपने कार्य म जुट गए। इतने मे एक व्यक्ति थका-प्यासा आकर वहा गिर पडा। सत ने कहा-'देखते क्या हो, जल्दी करो।' छाया मे ले जाकर दोना ने उसे लेटाया। पानी पिलाया। वह स्वस्थ हो उठ बेठा।

राजा ने करबद्ध प्रार्थना की और अपने चार प्रश्नो को दुहराया। सत-'राजन्! सबसे अच्छे समय की प्रतीक्षा मत करो। जो क्षण सामने है, वही सबसे अच्छा समय है। सबसे अच्छी जगह यही है, जहा हम अभी हैं। सबसे अच्छा आदमी वही है, जो सामने मौजूद है। सबसे अच्छा काम यही है-जो हम कर रहे हैं।'

राजा को आज प्रथम बार प्रश्ना का उत्तर मिला। उसे लगा-सदा ही, सब जगह, सब मे, सब कामो मे अच्छाई को पाया जा सकता है। अच्छा सदा प्राप्त है। उसके लिए तलाश करना, प्रतीक्षा करना-आत्म छलना है। 'नजरे बदल गई तो नजारे बदल गए।'

सत्य के लिये मितभाषी

'सत्यमेव जयते' यह ऋषि-वाणी सत्य है, झूठ के चाहे पैर न हों, फिर भी झूठ का ही लेना, झूठ का ही देना, झूठ का ही ओढना, झूठ का ही बिछौना और झूठ का ही चबैना चलता है। चाहे थोडे दिन, पर एक बार सच छिप-सा जाता है।

झूठ को बोलने वाला और धरती पर सोना सकडेला (सकीर्ण सीमा) क्यो रखेगा? जब कुछ करना ही नहीं है तो घोषणा करने मे पीछे क्यो। *झूठ बिना झगडा नहीं। झूठ के तीन भेद - झूठ, सफेद झूठ और आकडे। ऐसे भी लोग हैं कि जितना बोले उतना झूठ और नहीं बोले उतना* सच।

रघुवशी सत्यवादी होने के लिए मितभाषी बने थे। 'सत्याय मित भाषिणाम्।' यदि हम मितभाषी बनने का प्रयास करे तो व्यक्ति समाज और नेताओ के स्तर पर झूठ का अधेरा कम होता जाएगा और सत्य का उजाला फैलेगा।

हमारी प्रार्थना सच्चे दिल से हो - **असतो मा सद्‌गमय।**

- हे प्रभो! मुझे असत् से सत् की ओर ले चल।

आलोचना हो रचनात्मक

सन् १९४५ मे गाधी जी जब मुबई म थे ता उन्होंने किसी के सबध मे एक वक्तव्य तैयार किया। उनके सहयोगियो न जब उसे देखा तो लगा – यह आवश्यकता से अधिक लबा है। उनमें से एक व्यक्ति ने तो यहा तक कह दिया – 'आपने जो इतना सारा लिखा है, वह केवल चार पक्तिया मे आ सकता है।'

गाधी जी ने तुरत उत्तर दिया – 'क्या ऐसी बात है? तो कृपा कर आप ही सक्षिप्त कर दीजिए। मैं आख मींच कर उस पर हस्ताक्षर कर दूगा।'

यह सुनकर वह आलोचक स्तब्ध रह गए। कुछ बोल नहीं पाए। तब किसी ज्ञानी पुरुष के वचन याद दिलाते हुए सहज भाव से गाधी जी कहने लगे – 'दूसरे के काम की आलोचना करने वाले व्यक्ति को आलोच्य विषय की विधायक रूप से स्थान पूर्ति करने के लिए सदैव तयार रहना चाहिए।'

रचनात्मक और विधायक आलोचना यदि होने लगे तो वाद-विवाद के रूप में होने वाला वितण्डा – सवादी स्वरो में बदल कर सगीत बन सकता है।

मिलन मे मिलावट न हो

मिलन महोत्सव है। पर, सवाल है, मन का। स्वार्थ से मिलन हाता है, वह टूट जाता है और भावी लडाई का बीज इसमे छिपा है।

एकदिन देखा, हवा मद है, सब शात है। बेर ने केर (केला) से कहा - आओ मिले। केले का अनुभव था - कटु। फिर भी देखा - अभी सभी मिल रहे हैं - बैर विरोध को मिटाकर मिल रहे हैं। चारो ओर जोडतोड हो रही है, सभी के भीतर मिलन की ललक है।

बदलते वातावरण मे 'केर बेर' मिल गए। पर, जैसे ही हवा तेज चली कि सारा खेल बिखरने लगा। झडबेरी मस्ती मे झूमने लगी - उसके काँटे भी माथा ऊचा कर झूले पर चढ गए। इधर केला भी कापने लगा। देखा-केले के पखे की तरह फेले कोमल पत्ते काटा से चीर-चीर हो रहे हैं। कविवर रहीम ऐसे 'सग' को चेता रहे हैं -

कहु 'रहीम' कैसे निभै केर-बेर को सग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अग॥

'मन न मिले, वासू मिलणू किस्यो रे'
-मीरा।

हम मिल तो रहे हैं - जैसे बकरी और सिह-एक गायब। हम मिल रहे हैं - जैसे दूध मे पानी-यानी मिलावट। मिलना हो तो मिला- राम-भरत की तरह, दो देह एक प्राण। नहीं तो मिलन-मिलावट है। छलना है।

'हां' का अर्थ 'हां' हो

समाज भी विचित्र है। कई लोग काम करते नहीं किसी का, पर, उनको टरकाने में मजा आता है। 'ना' भी नहीं कहेंगे और झूठा 'हा-हा' करते सामने वाले को धोखे-ही-धोखे में रखकर बर्बाद कर देंगे। ऐसी मीठी जहरीली 'हा' से 'ना' लाख दर्जे अच्छी है, चाहे यह 'ना' कटु लगे, दवाई की तरह कडवी हो-पर, 'हा' के झूठे झासे से बेहतर है। मारवाडी मे कहावत है – 'एक 'नन्नू' सौ दु ख हरै।' यदि उचित ढग से, शिष्टता पूर्वक, स्पष्ट 'न' कह दें तो वह सैकडो दु खो को दूर करने वाला है।

चेले ने कहा – 'बाबाजी! बिल्ली आई है।' गुरु-'बेटा! बद कर दे, जिससे वह दूसरे घर से भी जावे।' ऐसा ही होता है – बाबाजी जानते हैं, यहा कुछ है नहीं, बिल्ली क्या बिगाडेगी। दूसरे घर के लाभ से वचित करने मे भी कई लोगो को मजा आता है।

कोशिश करें – हम अधिक से अधिक 'हा' करने वाले बनें और उस 'हा' को चरितार्थ करें किंचित् स्वार्थ-त्याग के द्वारा भी।

कौन गुरु, कौन चेला।

आगन्तुक-'मैं आपके चरणो म प्रकाश के लिए आया हू। मैं आपका शिष्य होना चाहता हू। मुझे दीक्षित करे।'

गुरु ने आगतुक को ध्यान से देखा और अनुभव किया जैसे 'इसे प्राप्तव्य-प्राप्त है, ज्ञातव्य ज्ञात है। पर परीक्षा तो लेनी ही है।'

गुरु-'दीक्षा ग्रहण करने के पहले मेरे तीन प्रश्नो का उत्तर दो।

-'तुम कहा से आए हो?'

आगन्तुक-'मैं जहा से आया हू, वहा से पूरा आया हू।'

गुरु-'वहा चावल के भाव क्या थे?'

आगतुक-'चावल जरूर वहा थे, भाव भी थे, पर वे सब धुल गए हैं। माथा यो है, जैसा कोरा कागज।'

गुरु-'तुम किस रास्ते से आए हो?'

आगतुक-'मैं नाव से आया, उसे डुबोता आया। जिस पुल से गुजरा, उसे तोड दिया, जिस रास्ते से आया-उसे मिटा दिया। मैं लौटने के लिए आपके पास नहीं आया, आगे बढने के लिए आया हू। लौटना होता तो रास्तो की फिक्र करता।'

गुरु-'तुम इसी क्षण दीक्षित हो, परीक्षित हो और मुक्त भी।'

आगतुक का मुखमडल प्रभा से दीप्त था।

गुरु-शिष्य एकाकार। 'कौन गुरु, कौन चेला।'

'मै कोन?'

प्रश्न उठने दो। यह चेतना है। एक सत ने कहा-'जब किसी ने पूछा-आप कौन हैं?' मैं चुप हो गया - क्योकि मैं सब को जानता हू, मैं केवल यही नहीं जानता कि मैं कौन हू।'

'मैं कौन हू'-यह प्रश्न नहीं है, यह सप्रश्न हैं-एक विराट् प्रश्न। यह ऐसा प्रश्न है-जिसकी तलाश मे निकला व्यक्ति सब जान लेता है, पर, यहा आकर उसका प्रश्न-उसे मौन कर देता हे। उस समाधान मिलता है, उत्तर नहीं। उत्तर मे वह स्वय शेष रह जाता है।

'मैं कौन हू।' इस प्रश्न का प्राणा से उठने दो। गहराई दो। उत्तर की जल्दी नहीं। जरा धीरज, जरा ध्यान, जरा मौन-इसका उत्तर किताबा म मत ढूढो।

इसका उत्तर मन से मत दो। इसका उत्तर तर्क से मत दा। मन उत्तर की बाधा है।

प्रश्न तब तक है, जब तक तर्क है, मोह है, अहकार है।

जैसे ही मोह गया, 'मैं' का कलुष गया। 'मेरा' गया - तब प्रश्न उठेगा ही नहीं।

'मैं कोन हू' 'आत्मान विद्धि'-यह जब अभीप्सा जगे तो समझो उत्तर प्रतीक्षा म हैं।

फिर लगेगा-'हम वहा है, जहा से हम को हमारी भी खबर नहीं।'

'हा' - गले मे अटक गई

एक राजकुमारी ने सन्यासियो के विषय मे खूब अध्ययन किया और उसने निर्णय किया-'वह किसी सन्यासी की अर्द्धांगिनी बनेगी।'

राजा ने समझाया और हितैषियो ने उसे तर्क-वितर्क से पराजित करने की कोशिश की। पर, वह राजकुमारी अपने निर्णय पर अडिग रही।

राजा कभी-कभी राजकुमारी को लेकर सन्यासियो की सेवा मे जाता और यदा-कदा उचित समय देखकर-अपनी कन्या की इच्छा को भी प्रकट करता। पर, सच्चे सन्यासी विवाह के लिए तैयार नहीं हुए।

एक व्यक्ति इस बात से परिचित होने के कारण विवाह की इच्छा से ढागी सन्यासी बनकर, आश्रम बनाकर रहने लगा। उस सन्यासी की शैली ऐसी थी कि लोग उसके प्रचार के शिकार हो गए। चारो ओर उसकी कीर्ति फैलने लगी।

राजा भी एक बार वहा पधारे। सन्यासी के रग ढग से प्रभावित हुए। राजकुमारी भी वहा अभिभूत हो गई।

राजा ने कन्या-समर्पण का सकल्प प्रकट किया। सन्यासी यही चाहता था, लगा सपना साकार हो रहा है। वह जैसे ही 'हा' भरने जा रहा था - उसके भीतर से आवाज आई-'अरे ढोगी, अरे छलछद्मी-सन्यासी का यह झूठा रूप तुम्हे राजकुमारी के योग्य बना रहा है तो यदि तू सच्चा सन्यासी बन जावे तो नित्य आनद और अखूट वैभव मिलेगा।' इस भीतरी आवाज से 'हा' उसके गले मे अटक गई और 'ना' कहकर वह सन्यास के सच्चे पथ का पथिक बन गया।

सलाह ले - अधिकारी से।

एक स्त्री थी। उसके पास हजार के आसपास रुपए थे। वह यह सोच नहीं पा रही थी-इनका क्या करू। वह सलाह लेने किसी बाबाजी के पास गई। पूछने लगी-'बाबा! रुपयो का क्या करू? बाबा 'हलवा पूडी खाया कर।' थोडे दिन बाद रुपए आधे से कम हो गए तो बाबा ने कहा- 'कोई बात नहीं, हलवा न सही, अब लपसी बनाकर मजे मे खा।' थोडे दिनो बाद सौ पचास रह गए, वह बाबाजी से सलाह लेने फिर गई। बाबाजी ने कहा-'अब छप्पर डलवा ले।' रुपए जब पूरे हो गए तो वह स्त्री विचार मे पड गई। सब खोकर पता चला-जिससे सलाह लेने गई थी, वह अनधिकारी था। वह पछताती कहने लगी-

पहली खाया सीरा पूरी, पीछे खाई लापसी।
बचे खुचे का छप्पर छवाया, आखर मोडो कर दी आपसी।

पहले हलवा पूडी का आनद लिया। फिर लपसी मे और बचे खुचे छप्पर मे लग गए। आखिर उस मुडित मस्तक वाले बाबा ने अपने जैसी बना कर छोड दी।

प्रश्न है-बुद्धिमत्ता और नासमझी का। गलत आदमी से सलाह लेनेवाले की ऐसी ही थूक फजीहत होती है।

प्रेरणा के स्वर

एक राजकुमार युद्ध मे हार गया। हार कर भाग आया और महल म सो गया।

उसकी मा विदुला वीरागना थी। वह यह जान कर दुखी हुई। वह जोशीले शब्दो में अपने पुत्र को कर्तव्य पथ पर बढने की प्रेरणा देने लगी।

उत्थातव्य जागृतव्य योक्तव्य भूतिकर्मसु।

– उठना चाहिए, जागना चाहिए, अच्छे कार्यो मे लग जाना चाहिए।

बीच मे रुकावट आवे तो घबड़ाना नहीं, आगे ही बढते चलो।

'क्षण भर धधक कर जीना श्रेयस्कर है,
चिरकाल तक घुट-घुट कर जीना व्यर्थ है।'

मा के इन उपदेशो से वह प्रेरणा पाकर युद्ध मे गया और विजयी होकर आया।

निराशा और हताशा के समय मा विदुला के ये अगार जैसे ओजस्वी तेजस्वी शब्द – स्वर हमे प्रकाश देते रहे –

"क्षण हि ज्वलित श्रेय
न च धूमायित चिरम्।"

स्वार्थी शिक्षा - कुशिक्षा

'तुम तीनो की पढाई पूरी हो गई है। अब एक परीक्षा बाकी बची है। वह अब हो जाएगी तो पास फेल का पक्का फैसला हो जाएगा।' गुरु ने कहा।

फिर एक दिन गुरु ने आकर तीनो को घर जाने की आज्ञा दे दी। छात्रो ने समझा-गुरुजी परीक्षा की बात भूल गए हैं।

तीनो ने घर की राह ली। बीच में एक बीहड वन था। देखा-रास्ते में काँटे बिखरे हैं। दो छात्र किनारे पर बच-बच कर चलन लगे। तीसरा रास्ते के काटे बीन-बीन कर किनारे करने लगा। दोनो छात्रा ने तीसरे साथी से कहा-'देखता नहीं, रात होने को है, फिर अधेरे मे भटकेगे।' तीसरा छात्र 'रात मे कोई राही इन काटो म उलझगा, इसीलिए मार्ग को निष्कटक बनाना जरूरी है।'

दोनो इसे नासमझी समझ आगे चल पडे। तीसरा छात्र अपने काम म लग गया। इतने मे छिपे हुए गुरुजी निकल आए और जोर से कहने लगे-

'दानो कहा जाते हो, दोनो फल। रुको, यह तीसरा छात्र उत्तीर्ण।'

शिक्षा जब तक स्वार्थी बनाती रहेगी - वह प्रत्यक्ष म न सही, पराक्ष मे तो कुशिक्षा है।

मन को पहचाने

'मन! तोहे केहि विधि कर समझाऊ।'

हे मेरे प्यारे मन! मैं तुम्हे किस विधि से समझाऊ। यह कथन किसी ऐरे गैरे का नहीं, सत प्रवर कबीर का है। सारा झगडा टटा मन का है। यह मन भी अजीब है, वह सब जगह जाता है तो कहता-'क्या करू, मेरा मन नहीं लगता।' कहने वाला कौन है, मन, वह किसकी शिकायत करता है-'मन की।' यह है - मन की छलना। जैसे कोई अपराधी स्वय हाजिर होकर अपने को भोला बनाकर, अपराधी की शिकायत करता है।

बात यह है कि मन की हजार चाले हैं - बडी अटपटी। अपने को द्रष्टा बना कर - जरा मन को समझे, इसकी होशियारी को परखे तो फिर मन मौन, शात और आपके कहे मे आपके पास।

सत की चटपटी भाषा मे मन को जरा पहचाने तो मन पकड मे।

"मन की गति है अटपटी, झटपट लखे न कोय।
यदि खटपट मन की मिटे, तो चटपट दर्शन होय॥

मन को डाटे फटकारे नहीं, प्यार से दुलरावे।

निन्दा-प्रशंसा में सम

शास्ता जेतवन मे विहार कर रहे थे। उनके साथ लकुटक भछिय स्थविर था। नए बने हुए चेले उसे कहते थे, 'कहो छोटे पिता! अच्छी तरह विहरते हो न? शासन मे मन लगता है न?' कभी-कभी उस स्थविर की नाक पकड कर भी ऐसा कहते थे। पर, वह लकुटक भछिय जरा भी क्रोध नहीं करता था।

भिक्षु बैठे बात कह रहे थे-'देखो न, नए बने हुए चेले (श्रमण) इस स्थविर को परेशान करते हैं, पर, वे कुछ बोलते ही नहीं।' भगवान् ने यह सुनकर और सारी बाते जान कर कहा-'भिक्षुओ! जिनके आस्रव (कर्म-मल) क्षीण हो गए हैं, वे क्रोध नहीं करते। वे ठोस पहाड की तरह अचल होते हैं, जो आधी से डिगते नहीं।'

-जैसे ठोस पहाड हवा से नहीं डिगता, वैसे ही पडित (आत्मज्ञानी) निदा और प्रशसा से नहीं डिगते। सच है-इसीलिए मरु मदाकिनी मीरा ने गाया है-

'कोई निदो कोई बिदो
म्हे तो सावरिये रा गुण गास्या।'

चाहे कोई निदा करे, चाहे वदना करे
मैं तो सावरिए के गुण गाऊगी।

मन को पहचाने

'मन! तोहे केहि विधि कर समझाऊ!'

हे मेरे प्यारे मन! मैं तुम्हे किस विधि से समझाऊ। यह कथन किसी ऐरे गैरे का नहीं, सत प्रवर कबीर का है। सारा झगडा टटा मन का है। यह मन भी अजीब है, वह सब जगह जाता है तो कहता-'क्या करू, मेरा मन नहीं लगता।' कहने वाला कौन है, मन, वह किसकी शिकायत करता है-'मन की।' यह है - मन की छलना। जैसे कोई अपराधी स्वय हाजिर होकर अपने को भोला बनाकर, अपराधी की शिकायत करता है।

बात यह है कि मन की हजार चाले हैं - बडी अटपटी। अपने को द्रष्टा बना कर - जरा मन को समझे, इसकी होशियारी को परखे तो फिर मन मौन, शात और आपके कहे मे आपके पास।

सत की चटपटी भाषा मे मन को जरा पहचाने तो मन पकड मे।

''मन की गति है अटपटी, झटपट लखे न कोय।
यदि खटपट मन की मिटे, तो चटपट दर्शन होय॥

मन को डाटे फटकारे नहीं, प्यार से दुलरावे।

निन्दा-प्रशसा मे सम

शास्ता जेतवन मे विहार कर रहे थे। उनके साथ लकुटक भद्दिय स्थविर था। नए बने हुए चेले उसे कहते थे, 'कहो छोटे पिता! अच्छी तरह विहरते हो न? शासन मे मन लगता है न?' कभी-कभी उस स्थविर की नाक पकड कर भी ऐसा कहते थे। पर, वह लकुटक भद्दिय जरा भी क्रोध नहीं करता था।

भिक्षु बैठे बात कह रहे थे-'देखो न, नए बने हुए चेले (श्रमण) इस स्थविर को परेशान करते हैं, पर, वे कुछ बोलते ही नहीं।' भगवान् ने यह सुनकर और सारी बाते जान कर कहा-'भिक्षुओ! जिनके आस्रव (कर्म-मल) क्षीण हो गए हैं, वे क्रोध नहीं करते। वे ठोस पहाड की तरह अचल होते हैं, जो आधी से डिगते नहीं।'

-जैसे ठोस पहाड हवा से नहीं डिगता, वैसे ही पडित (आत्मज्ञानी) निदा और प्रशसा से नहीं डिगते। सच है-इसीलिए मरु मदाकिनी मीरा ने गाया है-

'कोई निदो कोई बिदो
म्हे तो सावरिये रा गुण गास्या।'
चाहे कोई निदा करे, चाहे वदना करे
मैं तो सावरिए के गुण गाऊगी।

किसी भगीरथ की प्रतीक्षा मे

'अंधेर नगरी' केवल हास्य नाटिका मात्र हो तो हम खूब हसाती है पर जब जीवन म उतरती है तो रुलाती है और कुछ कर गुजरने के लिए उकसाती हुई कहती हे-'हिम्मत हो तो मुझे बदलो।'

इतिहास के बीच-बीच मे ऐसे काल खड आते हैं, जब अधेरे क भीतर रोशनी की किरण फूटती हैं। पर, कम।

ऐसी अधेरगर्दी म से ही अनुभूत कहावत लोक मानस म सहसा उमड पडती हैं।

''मामा को व्याव, मा परोसगारी।
जीमो रै बैटा रात अधारी॥

अब डर किस बात का। मामा का विवाह है, मा परोसने का काम कर रही हे ओर इधर अधेरी रात है, कोई देख नहीं रहा है। भोजन करने वाले अपने ही बेटे हैं। मा खूब घी उडेल कर परोस रही है। दूसरे वचित हा तो हा।

यह कहावत यदि कहने भर को है तब तो मजेदार है। पर क्या ऐसा नहीं लगता कि जनता को भूलकर प्राय दलवाले अपने ही दल के वरिष्ठ (?) लोगा को खूब खिलाने-पिलाने मे मशगूल हैं।

जनता तरसती है- स्वराज्य की गगा उतरती तो दिखाई दी, पर, कहा गायब है। किसी तपोनिरत भगीरथ की प्रतीक्षा मे है।

मिले - लोक-हित के लिए

मिलने के समीकरण बनते हैं और फिर बिखर जाते हैं। इसके कारण?

मिलन क पीछे यदि भय है, मिलने के पीछे यदि लोभ है तो मिलन के सभी प्रयत्न हमारे विफल होते रहेगे।

शेक्सपीयर के एक पात्र ब्रुटस् का यह कथन सही है-

'मिलने के लिए, मैत्री के लिए चाहे हम कितनी ही सौगध खाए, बेमतलब है। हमे-मिला सकती है-केवल लक्ष्य की एकता।'

हमारा लक्ष्य-यदि समाज का उत्थान हो, राष्ट्र की सेवा हो, तो यही एक ऐसा बिंदु है-जो हजारो मतभेदो मे भी हमें एकता के सूत्र मे बधा रख सकता है।

हम चाहे मित्र बनते की हजार शपथ खाए, अग्नि को साक्षी करे या यह कह कि जो इस सधि को तोडगा, वह नमक की तरह पानी मे घुलकर गल जाएगा।

पर, सधि पत्र स्वार्थों से प्रबल नहीं होते। सधि पत्रो की स्याही सूख ही नहीं पाती और घोषणाओ की गूंज, अभी मिट ही नहीं पाती कि इतने मे बिखराव की दरारे फैल जाती हैं।

हम मिले, प्रेम से मिलें, लक्ष्य सिद्धि के लिए मिलें। लक्ष्य हो, जनहित-जहा व्यक्ति के स्वार्थ की बलि हो। समष्टि चेतना और लोकहित से बनने वाले समीकरण ही टिकते हैं।

क्या हम यशोधरा की तरह कह सकते हैं-

"मेरे दुख मे भरा विश्व सुख,
क्यो न भरू फिर मैं हामी।
बुद्ध शरण, धर्म शरण, सघ शरण गच्छामिऽ।
- यशोधरा।

किसी भगीरथ की प्रतीक्षा मे

'अधेर नगरी' केवल हास्य नाटिका मात्र हो तो हमे खूब हसाती है, पर, जब जीवन मे उतरती है तो रुलाती है और कुछ कर गुजरने के लिए उकसाती हुई कहती हे-'हिम्मत हो तो मुझ बदलो।'

इतिहास के बीच-बीच मे ऐसे काल खड आते हैं, जब अधेरे के भीतर रोशनी की किरण फूटती हैं। पर, कम।

ऐसी अधेरगर्दी मे से ही अनुभूत कहावते लोक मानस म सहसा उमड पडती हैं।

''मामा को व्याव, मा परोसगारी।
जीमो रै बैटा रात अधारी॥

अब डर किस बात का। मामा का विवाह है, मा परोसने का काम कर रही हे और इधर अधेरी रात है, कोई देख नहीं रहा है। भोजन करने वाले अपन ही बेटे हें। मा खूब घी उडेल कर परोस रही है। दूसरे वचित हा तो हा।

यह कहावत यदि कहने भर को है तब तो मजेदार है। पर क्या ऐसा नहीं लगता कि जनता को भूलकर प्राय दलवाले अपने ही दल के वरिष्ठ (?) लोगा को खूब खिलाने-पिलाने म मशगूल हैं।

जनता तरसती है- स्वराज्य की गगा उतरती तो दिखाई दी पर, कहा गायब है। किसी तपोनिरत भगीरथ की प्रतीक्षा मे है।

शूल बन गये फूल

स्वभाव को शात रखना, विपरीत स्थितिया के मध्य धीरज रखना - इसी से मनुष्य का पता चलता है।

साधारणत हम हडबडा जाते हैं, अधीर हो जाते हैं, उत्तेजित हो जाते हैं और तमतमाते हैं। इस समय जरा भी अपने को सभाल ले और भीतर से गुनगुनावे - चाहे मौन भाषा मे-

'घबराए मनुष्य! तेरे भीतर ईश्वर की विभूति है, खुदा का नूर है। मन को शात कर, हाथो की मुट्ठिया बाध, अपने रास्ते पर पैर बढा। रास्ते की रुकावटे, कायरो के लिए ही रुकावटे हैं, धीर पुरुष के लिए रास्त की सीढिया बन जाती हैं।'

रुकावटो का सीढियो मे बदल जाना - एक चमत्कार है, एक करिश्मा है। पर, जरा से विचार से ऐसा सभव है। साहस, धीरज, सहिष्णुता और विवेक को जैसे ही पुकारा कि असभव सभव हुआ।

फिर रास्ते की धूलि बन जाती है, चदन और शूल बदल कर बन जाते हैं फूल। ललाट से झरती पसीने की बूदे धरती पर मोती की आब लिए चमकती हैं।

फिर महाकवि निराला के स्वर जैसे साकार होगे-

'पथ के उपल उत्पल हुए ज्ञात।' - रास्ते के पत्थर अब लग रहे हैं - जैसे उत्पल-कमल हो।

उचित प्रशंसा करना भी सीखे

अपनी प्रशसा सुनना अच्छा लगता है। पर, इसकी एक सीमा है। यह एक तरह की आधि (मानसिक बीमारी) न बने। लोग हैं, जो अच्छा काम करते हैं, पर, चाहते हैं–सभी उनकी तारीफ करें। इसके लिए दल बनाते हैं, अभिनदन स्वय कराते हैं और अपने मुह से अपनी तारीफ करते करते अघाते नहीं। यह भस्मक रोग तक देखने में आता है। प्रशसा-अतृप्त प्राण–रातदिन प्रशसा के लिए सुलगता रहता है। पर, जब दूसरे की प्रशसा करने का अवसर आता है तो वे अत्यत कृपण हो जाते हैं।

यदि हम दुनिया को बेहतर बनाना चाहते हैं तो दूसरे की उचित, उत्साहप्रद और निष्काम प्रशसा करने को अजमा कर देखें तो गुणों का विकास होगा। यह हम नहीं समझ पाते कि हम प्रशंसक बनकर स्वय प्रशस्य बनते हैं।

महाकवि तुलसी ने इस पीडा का गहराई से अनुभव किया, तभी ये उद्‌गार स्वत फूट पडे हैं–

जग बहु नर सर सरि सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई॥
सज्जन सकृत सिधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥

– रामचरित मानस

हे भाई! जगत् में तालाबों और नदियों के समान मनुष्य ही अधिक हैं, जो जल पाकर अपनी ही बाढ़ से बढते हैं (अर्थात् अपनी ही उन्नति से प्रसन्न होते हैं)। समुद्र-सा कोई एक विरला ही सज्जन होता है जो चद्रमा को पूर्ण देखकर (दूसरों के उत्कर्ष देखकर) उमड पड़ता है।

दूसरों के गुणों को देखकर–उनसे मुदिता का अनुभव कर–हम अपने को गुणवान् बना सकते हैं और ससार को और अधिक सुदर भी।

शूल बन गये फूल

स्वभाव को शांत रखना, विपरीत स्थितियों के मध्य धीरज रखना - इसी से मनुष्य का पता चलता है।

साधारणतः हम हड़बड़ा जाते हैं, अधीर हो जाते हैं, उत्तेजित हो जाते हैं और तमतमाते हैं। इस समय जरा भी अपने को संभाल लें और भीतर से गुनगुनावें - चाहे मौन भाषा में-

'घबराए मनुष्य! तेरे भीतर ईश्वर की विभूति है, खुदा का नूर है। मन को शांत कर, हाथों की मुट्ठियां बांध, अपने रास्ते पर पैर बढ़ा। रास्ते की रुकावटें, कायरों के लिए ही रुकावटें हैं, धीर पुरुष के लिए रास्ते की सीढ़ियां बन जाती हैं।'

रुकावटों का सीढ़ियों में बदल जाना - एक चमत्कार है, एक करिश्मा है। पर, जरा से विचार से ऐसा संभव है। साहस, धीरज, सहिष्णुता और विवेक को जैसे ही पुकारा कि असंभव संभव हुआ।

फिर रास्ते की धूलि बन जाती है चंदन और शूल बदल कर बन जाते हैं फूल। ललाट से झरती पसीने की बूंदें धरती पर मोती की आब लिए चमकती हैं।

फिर महाकवि निराला के स्वर जैसे साकार होंगे-

'पथ के उपल उत्पल हुए ज्ञात।' - रास्ते के पत्थर अब लग रहे हैं - जैसे उत्पल-कमल हों।

जनहित कहता है

'गुड दे दै, नहीं तो मैं छोरी हुजास्यू।' एक लडका गुड का बेहद शौकीन था। वह गुड इतना अधिक खाता था कि उसे सभी मना करने लगे। गुड के कारण उसका शरीर दुर्बल हो गया। वैद्य भी उसे मना करते।

उस लडके को उसकी मा जब गुड खाने से मना करती तो वह धमकी देता, उसे डराता और कहता - 'तुम यदि गुड नहीं दोगी तो मैं लडके से लडकी बन जाऊगा।' इस धमकी के सामने वह बेचारी डर जाती और न चाहने पर भी गुड खाने को चुपके-चुपके दे देती। पर, एक दिन उसे यह कठोर निर्णय लेना पडा कि वह लडके को गुड खाने को नहीं देगी, चाहे कुछ भी हो जाए। लोगो ने भी मा को समझाया कि इस बदरघुडकी म नहीं आना, 'यो कोई बनता है, लडके से लडकी।'

ऐसा लगता है, मा के इस निर्णय से लडका सुधर गया होगा और फिर धमकी बद हो गई होगी।

पर, यह कहानी जब इतिहास बनती है तो आश्चर्य होता है कि हम कुछ भी कहीं से सबक लेने को तैयार नहीं। 'हमे यह पद दो, यह पद दो' इसमे मौन धमकी भी है कि यदि नहीं दोगे तो तलाक वाली धागे से बधी झूलती तलवार सिर पर है।

व्यक्तिगत, दलगत स्वार्थ कहता है - 'धमकी के सामने झुक जाओ जनहित कहता है - मत झुको।' निर्मम काल तैयार है - उचित के लिए उपहार और अनुचित के लिए दड लेकर।

चिंतन मनन

जो अच्छा है, वह मेरा है

हमारे लिए राजा राम एक परंपरा है, यही भारतीय संस्कृति है। जब शासक बन गया तो अब उसके अपने कोई नहीं, सभी अपने हैं। जो अच्छे हों, वे अपने हैं। जो दुष्ट हैं, बुरे हैं – वे पराए हैं। अत हमारे शासक न्याय की तुला सदेव सीधी रखते थे।

महाकवि कालिदास इस परंपरा पर सदैव मुग्ध रहे हैं तभी उनके ये उद्गार उमड़े हैं–

'मैं इस वंश पर मुग्ध हू क्योकि इनके शासक – चाहे कोई अपने भाई बंधु हो या निजी हो – वे यदि दुष्ट, आततायी हैं तो उनको ऐसे काटकर फेंक देते थे, जैसे कोई व्यक्ति सांप से डसी हुई अपनी अंगुली को काटकर फेंक देता है पर – यदि कोई विरोधी हो और योग्य हो तो उसका आदर करते थे, जैसे कोई बीमार – कड़वी दवाई का भी – उसके गुणों के कारण आदर करता है। उसको अपनाता है।'

द्वेष्योऽपि समत शिष्टस्तस्यार्त्तस्य यथौषधम्।
त्याज्यो दुष्ट प्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता॥

(रघुवंश, १–२८)

हम जरा दृष्टिकोण बदल कर परखें–

"जो मेरा है वह अच्छा है – ऐसा नहीं।
जो अच्छा है वह मेरा है।"

मनुष्य-एक धुन

स्वाति नक्षत्र का समय है। आकाश मे मेघ हैं, उनसे बूदे गिरी हैं। सीपिया ने उन्हे लिया है। वे अब सागर मे डूब गई हैं। साधना मे लगी हैं, वे बूदे अब मोती बन रही हैं। यह वर्णन सीपिया के बहाने, उनके व्याज से, साधको का है।

साधक सुनता है, मनन करता है, गुनता है और फिर वह उस विचार मे डूब जाता है। विचार तन्मयता - यही साधक का सर्वस्व है। रात दिन लगन लग जाती है - उसी मे वह सोता उठता है और जीता जागता है।

स्वामी विवेकानद के शब्दा मे स्मरण रहे - 'एक भाव को पकडो - उसी का लेकर रहो। उसका अत देखे बिना उसको मत छोडो। जो एक भाव को लेकर उसी में मत्त रह सकत हैं, उन्हीं के हृदय म सत्य-तत्त्व का उन्मष होता है।'

वास्तव म मनुष्य एक धुन है, एक लगन है, एक समर्पण है। एक लक्ष्य का लेकर उसी में खो जाव। यही सिद्धि का मार्ग है।

यह पथ शूर का है, यही सन्त का और साधक का। 'मन्त्र वा साधयामि शरीर वा पातयामि।' काम सधे या प्राण ही जाय।

सिद्धार्थ ने गृह त्याग के समय निश्चय किया -

'मुक्ति हेतु अब मैं जाता हू,
मुक्ति, मुक्ति बस मुक्ति।'
- यशाधरा।

ऐसा वज्र निश्चय ही सबोधि प्राप्ति की दृढ भूमिका है।

स्वेद बिन्दुओ का सौरभ

वर्षा ऋतु का आगमन निकट था। महर्षि कणाद ने शिष्यो से कहा – 'होम कार्य और रसोई के लिए समिधा और सूखी लकडी इकट्ठी कर ली जाए।'

शिष्या ने दूर-दूर जाकर सूखी लकडियो के ढेर लगा दिए। उन्ह बाध कर, कधे पर लादकर आश्रम मे पहुचाया।

अगले दिन नित्य की भाति शिष्य स्नान करने नदी पर गए। उन्हाने जहा परिश्रमपूर्वक लकडिया इकट्ठी की थी, वे स्थान सहसा मधुर गध वाले सहस्रो फूलो से महक उठे थे। शिष्य चकित थे।

महर्षि ने उनकी जिज्ञासा शात करते हुए कहा – 'जहा-जहा पर तुम्हारे स्वेद बिदु गिरे हैं, वहा-वहा पर मधुर सौरभ वाले सुदर सुमन खिल रहे हैं।'

सचमुच पसीने की पवित्र बूदे-जिन ललाटो से झरती हैं, वे ललाट दिव्य हैं और वहा की धरती का आचल सदा मोतियो से जडा रहता है।

श्रम का अर्थ है – पुरुषार्थ। यानी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सुदर समन्वय।

सकल पदारथ है जग माही।
कर्म-हीन नर पावत नाही॥

आचरण पूजा है

'भिक्षुओ। आज से चार महीन बाद मैं परिनिर्वृत हा जाऊगा।' भगवान् ने वैशाली म विहार करत हुए यह घाषणा की। शास्ता क पास रहने वाल सात सा भिक्षुओ मे भय व्याप्त हा गया। भिक्षु झुड-झुड बनाकर 'क्या करेग?' साच कर व्याकुल हो विचरण करने लग।

तिस्स स्थविर नामक भिक्षुक ने विचारा - 'शास्ता चार मास के बाद परिनिर्वृत होगे, अत मुझे शास्ता के रहते अर्हत्व प्राप्त कर लेना है।' वे अलग रहन लग मौन हो साधना मे रत हा गए। भिक्षुका ने तिस्स क इस व्यवहार से रुष्ट हो शास्ता से कहा। शास्ता ने तिस्स का बुला कर सारी बात जान लीं।

बुद्ध ने तिस्स भिक्षुक को साधुकार (धन्यवाद) देते हुए कहा - 'भिक्षुआ। जो मुझ पर स्नेह रखता है, उस तिस्स की तरह होना चाहिए। गधमाल आदि से मेरी पूजा करने वाला की अपक्षा वे सच्चे पुजारी हैं, जा धर्म का आचरण करत हैं।'

नि सदह हम आगे बढने के लिए गुर चाहिए। पथ-प्रदशक चाहिए। पर गुरु बैशाखी नहीं है, जो चेला का लगडा बना कर सदा अपना सहारा दे पालतू पशु बनावे।

भगवान् कृष्ण ने पार्थ से निष्कर्ष रूप से कहा - 'मैंने तुम्हे समझा दिया है, अब जैसा चाहा, वैसा करा।'

'यथेच्छसि तथा कुरु' - अविराम विकास का यहा स्वण-सूत्र है।

राम की चाह, काम के शिकार

'सबसे ऊची प्रेम सगाई।

दुर्योधन का मेवा त्यागा,

साग बिदुर घर खाई।'

पुराना भजन है। नि संदेह प्रेम-सगाई सबसे ऊची है, जैसे कोई गगनचुबी महल। पर, उसकी नींव किस पर खडी है, शर्त है-'साग बिदुर घर खाई।' यहीं आकर हम रुक जाते हैं, क्योंकि हमारा मन तो 'दुर्योधन के मेवा' के इर्द-गिर्द चक्कर काटता है, उसी मे अटकता है।

हमारी महत्त्वाकाक्षा और हमारी लोभाकाक्षा मे कहीं मेल नहीं। हम प्रकाश चाहते हैं अधेरे से लिपटे हैं। राम की चाह है और काम के शिकार हैं।

चाहते हैं शूर कहलाव और है - प्राणो का बहद मोह।

'हींग लगै न फिटकडी रग चोखा आवै।'

प्रेम के ऊचे शिखर पर चढने के लिए हमे जनजीवन की ऊबड-खाबड घाटियो के अदर से गुजरना पडेगा।

आचरण पूजा है

'भिक्षुओ! आज से चार महीने बाद मैं परिनिवृत हो जाऊंगा।' भगवान् ने वैशाली में विहार करते हुए यह घोषणा की। शास्ता के पास रहने वाले सात सौ भिक्षुओं में भय व्याप्त हो गया। भिक्षु झुंड-झुंड बनाकर 'क्या करेंगे?' सोच कर व्याकुल हो विचरण करने लगे।

तिस्स स्थविर नामक भिक्षुक ने विचारा - 'शास्ता चार मास के बाद परिनिवृत होंगे, अतः मुझे शास्ता के रहते अर्हत्व प्राप्त कर लेना है।' वे अलग रहने लगे, मौन हो साधना में रत हो गए। भिक्षुकों ने तिस्स के इस व्यवहार से रुष्ट हो शास्ता से कहा। शास्ता ने तिस्स को बुला कर सारी बातें जान लीं।

बुद्ध ने तिस्स भिक्षुक का साधुकार (धन्यवाद) देते हुए कहा - 'भिक्षुओ! जो मुझ पर स्नेह रखता है, उसे तिस्स की तरह होना चाहिए। गंधमाल आदि से मेरी पूजा करने वालों की अपेक्षा वे सच्चे पुजारी हैं, जो धर्म का आचरण करते हैं।'

निःसंदेह हमें आगे बढ़ने के लिए गुरु चाहिए। पथ-प्रदर्शक चाहिए। पर गुरु बैशाखी नहीं है, जो चेलों को लंगड़ा बना कर सदा अपना सहारा दे पालतू पशु बनावे।

भगवान् कृष्ण ने पार्थ से निष्कर्ष रूप से कहा - 'मैंने तुम्हें समझा दिया है, अब जैसा चाहो, वैसा करो।'

'यथेच्छसि तथा कुरु' - अविराम विकास का यही स्वर्ण-सूत्र है।

इंसाफ के साथ दया भी

एक न्यायाधीश क सामने एक चोर पकड कर लाया गया। लोग भी इधर-उधर से तमाशा देखने आ जुटे थे। गवाहो से यह साबित हो गया कि इसने चोरी की है।

सवाल उठा इसने चोरी क्यो की? सारी बात सुनन के बाद स्पष्ट हो गया कि इसन चोरी तो अवश्य की है, पर, भूखो मरते की है।

न्यायाधीश इसके पहले तो यह देखने-विचारने में लगे थे कि कौन-से कानून की धारा लगती है, उसके मुताबिक कितना दड वाजिब है।

पर, जस ही न्यायाधीश को पता चला कि चारी का कारण और काई नहीं, भूख है ता न्यायाधीश ने कानून क पाथा को बद करते हुए निर्णय दिया-"इसने चोरी की है पर इसकी नीयत चोरी की नहीं थी। इसलिए यह बरी किया जाता है। और साथ ही सामने जितन लाग खडे हैं, सब पर एक-एक रुपया जुर्माना किया जाता है। इस आदमी पर जो यहा कुर्सी पर बैठा है - उस पर जुर्माना किया जाता है - क्योकि जिस समाज म भूखो मरने के कारण चोरी हो वह समाज ही दडनीय है। सारी रकम इसका दे दी जाए।"

यह फैसला शायद अदालती नियम से न हो पर न्यायाधीश ने यहा न्याय से ऊपर उठकर करुणा की, रहम की ओर से फैसला सुना दिया।

आदमी इसाफ करता है पर ईश्वर - दया।

कलम चाटुकार न हो

भगवान् राम की ओर से भगवती सीता का परित्याग बाद का जोड़ा हुआ हिस्सा है। यह मिलावट है, रामायण का प्रक्षिप्त अंश है।

पर, थोड़ी देर के लिए हम इसे सत्य मान कर एक मिथक के रूप मे अर्थ का संधान करते हैं।

एक जलता हुआ सवाल है, सत्ता ने सीता को, यानी निर्दोष को, परित्यक्त किया है। आज भी सत्ता की ओर से क्या लाखों लोग सताए नहीं जाते हैं।

परित्यक्ता सीता को सहारा मिला, स्नेह मिला, संरक्षण मिला आदि कवि वाल्मीकि की ओर से।

क्या यह मिथक साहित्यकार के दायित्व बोध को उसकी महत्ता को रेखांकित नहीं करता, महाकवि वाल्मीकि के वंशधर कवियों की रचनाधर्मिता तभी सार्थक है – जब वे उपेक्षित, पीड़ित और दमित के पक्षधर बन कर आगे आएं।

देखने मे आता है, जब कलम सत्ता की चाटुकारिता करती है तो एक ओर महल भी बनते हैं और दूसरी ओर कीर्ति की कब्रें भी।

लाखों क्रौंच कराह रहे हैं।

जाग आदि कवि की कल्याणी।

यौवन के दिन - गौरव के दिन

जीवन का यह एक नग्न सत्य है कि कार्य करने को, कुछ कर गुजरने की, एक उम्र होती है। उस समय कुछ कर पाए तो ठीक, नहीं तो बाढ उतर जाती है। उत्सव बीत जाता है, फिर पीछे उत्सव के बाद के मलिन चिह्न रह जाते हैं - उदासी भरे, धुधले, फीके, टूटे चिह्न। 'बीता उत्सव ज्यो चिह्न म्लान छाया श्लथ।' - निराला।

ऐसी स्थिति आने के पहले जीवन में जरा सतर्क रहे, तेजी से आते शक्ति भरे दिनो को अपना बनाए। यौवन के दिन ही गौरव के दिन हैं। यौवन जीवन का सर्वोत्तम दर्शन है - यह 'रक्त दर्शन' है- खून की इस बढती रफ्तार मे नया इतिहास लिखा जाता है। निराश समाज के लिए यही यौवन आशा का दीप सजोकर आता है। इसीलिए जब भी कोई सत, कोई युग द्रष्टा-पुकारता है तो देश के नौजवानो को पुकारता है, तरुणाई के तेज का आवाहन करता है।'

राजस्थान के कवि ने इस सत्य को मोहक ढग से सजाया है-

करणी हो सो कीजिये, काला केसा काम।
धोला लख धीरज धरो, हिये बिचारो राम॥

कुछ कर गुजरना हो तो जब तक केश काले हैं - जवानी है, कर डालो। फिर कहा मौका! जब बुढापा आ जावे, बाल सफेद हो जावें तो काम करने के लिए तडपो मत। धीरज धारण करो। अब तो बैठे-बैठे भगवान् का स्मरण करो।

चाहे हजार अपवाद हों, पर यौवन के दिन ही गौरव के दिन हैं।

श्रम का मधुर इतिहास

गांधीजी के निमंत्रण पर गोपाल कृष्ण गोखले दक्षिण अफ्रीका गए थे। गोखले का वहां शानदार स्वागत हुआ। सबसे बड़ा स्वागत था - गांधीजी द्वारा। वे गोखले के सारे कामों को स्वयं ही करना चाहते थे। करते भी थे।

इस प्रवास में श्री गोखले ने अधिक आनंद उठाया या गांधीजी ने, यह कहना कठिन।

गोखलेजी पढ़ते-पढ़ते पुकारते, कभी सुबह पुकारते, कभी दोपहर को, कभी शाम को और कभी रात को - 'मेरा नौकर कहां, मेरा नाई कहां, मेरा धोबी कहां, मेरा पाखाना साफ करने वाला कहां' - गांधीजी इस पुकार पर झट आ जाते प्रसन्नता से कहते - 'जी साहब' हाजिर है।

गोखलेजी जानते थे - गांधीजी की तीव्र इच्छा स्वयं ही सारे काम करने की है। इसलिए कुछ मजाक से, कुछ आनंद और गहरे स्नेह भाव से गद्गद् वाणी से पुकारते गोखलेजी और गांधीजी इस सारे कामों के करने के बहाने श्रम की प्रतिष्ठा का और सेवा के गौरव का नया अध्याय लिख रहे थे।

गिरना - एक पाठ है

स्मृति पुरस्कार है, स्मृति अभिशाप है। स्मृति इतिहास है, स्मृति निराशा है, स्मृति आशा है। प्रश्न है - हम कौन सी स्मृति से अपने कोश को भरे। यदि हमने निराशा, उदासी और असफलताओ को बढा-चढा कर याद रखने की आदत बना ली है तो समझो हमारी गाठ मे ककड पत्थर हैं। और यदि हमने जीवन के बगीचे से खिलते फूलो को चुनकर उनसे अपना आचल भरा है तो उनकी खुशबू हमे नित नूतन ताजगी, स्फूर्ति और उमग के रगो से रगती रहेगी।

हम गिरते हैं, कितने कम - सौ पचास वर्ष के दौडते-भागते, चलते-फिरते, घूमते सैर करते-जीवन मे हुआ क्या - दस पाच दफे गिर गए हैं - उनको याद रख कर क्यो अपने को रज और गम की धूल से भरे।

गिरते क्या है? इसका जबाब सीधा और साफ है - जमीन ऊबड खाबड है, मन चचल है, ध्यान बटता है, देह का सतुलन बिगडता है और इधर धरती मे खींचने की ताकत है - गिर जाते है। गिरते तो कभी-कभी हैं। हम दिन भर चलते हैं। याद रखे - इस गिरने ने ही खडा होना, सभलना सिखाया है।

गिरना एक पाठ है - जो कहता है और सभल और सभल कर चल। गिरना हमारा बचपन है, गिरने पर सभल कर और उत्साह से चलना, यौवन है, गिर कर जीवन भर पछताना, सदा के लिए पड जाना - बुढापा है।

'चरैवेति-चरैवेति' यही तरुणो का - नहीं, कहना चाहिए, तारुण्य का ओकारनाद है।

तेरी रज मे लोट लोट कर बडे हुए हैं।
घुटनो के बल सरक सरक कर खडे हुए हैं।

तूफानो मे जो अडिग अडे रहे हैं - वे इतिहास मे सदा खडे मिलेगे। उनका कीर्ति कलेवर अजर अमर है।

चिंतन मनन

काकोजी अटी मे

एक साधारण स्थिति का आदमी किसी दुकान पर बाजरी खरीदने गया दुकान का मालिक घर गया हुआ था और दुकान पर उसका भतीजा बैठा था।

ग्राहक–एक रुपए की बाजरी दे।

लडका होशियार था, समझ गया कि यह उधार बाजरी ले जाएगा और फिर एक रुपया लेने के लिए धक्के खाने पडगे। लडके ने कहा–'काकोजी अभी घर गए हैं। वे आवे, तब ले जावे।' ऐसा मीठा उत्तर लडके ने दिया।

पर, वह आदमी अनुभवी था लोक व्यवहार का पारखी था। वह लडके की विवशता समझ गया।

आदमी ने अपनी अटी से कलदार रुपया निकाला और खरे होने के प्रमाण के लिए अगूठे को नीचे कर, ऊपर तर्जनी अगुली रख 'टन-टन' जोर से बार-बार बजाया और हसते हुए कहा–

'बेटा। डर मत, काकोजी कहीं गए नहीं है– देख, काकोजी अटी मे है।'

इसीलिए कहावत है–'रूपली पल्लै तो रोई म चल्लै।'

यदि रुपए पास मे हो तो रोई (अरण्य) जगल मे भी चलता है काम। चाहे कचन मे 'सर्वेगुणा ' आश्रय न भी लेते हो तो भी यथार्थ मे रुपए का कितना ही अवमूल्यन हो, पर है–वही मूल्य मापक।

यो हम विद्या को भी धन कहते हैं, सतोष को भी धन कहते हैं– पर, अभी यह स्थिति यथार्थ मे नहीं–धन तो रुपया ही है। 'अर्थ अनर्थ मूल' है–कहते भर हैं।

'नगद नाणा तो बीन परणीजै काणा।' यदि हमारे पास नगद धन हो तो काने दुल्हे का ठाठ से विवाह होता है।

पर समाज मे ऐसे भी लोग होते रहते हैं–जो 'मानो हि महता धनम्' मानते हैं। इससे समाज का यह यथार्थ हारता रहता है।

जानकारी और विवेक मे बढती दूरी

आज हमारे पास बेमतलब सूचनाओ के अबार लगे हैं। जानकारी बढ रही है, पर, विवेक? जरा कम, बहुत कम। हमारे घरा में आकाश से ऊपर से-दूरदर्शन के बहाने-इतना ज्ञान (नॉलेज, जानकारी क रूप म) बरस रहा है कि उसको समेटना कठिन। लगता है हम छोटे बच्चा के हाथ म चाकू दे रहे है जिससे वे अपना हाथ काट कर लहूलुहान हो रहे हैं।

पहले शिक्षा थी-जानकारी के साथ विवेक (सही गलत की पहचान) को भी बढाने वाली।

अब हम जानकारी मे बी ए हैं और विवेक की दृष्टि मे शिशु कक्षा म हैं। विवक और जानकारी साथ-साथ तो नहीं चलते थे, पर पास-पास थे। इससे उपद्रव कम थे।

जीवन तो एक सतुलन है, सगीत है। सगीत म स्वरा का आरोह है अवरोह है पर एक क्रम है।

यह क्रम जब टूटता है तो व्यतिक्रम आता है-जीवन म शून्यता व्याप्त हो जाती है।

ज्ञान और विवेक की इस दूरी की खाई को पाटे बिना हम चढग ऊचे कम, गिरगे नीचे अधिक।

आज हम इतन बड हो रहे हैं कि हम धरती पर खड अपनी भुजाओ से चाद को छू रहे हैं, पर हमारे हाथ पडोसी के आलिगन म जरा छोटे हो गए हैं। कोरी बुद्धि इबलीस (शैतान) है, भाव को भी बढाव क्योकि भाव देवता है।

सिद्धान्त बनाम मुद्दा

गर्मी के दिन हैं, किताब म लिखा है - पतले, झीने, हल्के कपडे पहनो। हम किताब पढ रहे हैं - सर्दी मे, जब पेड पौधे तक ठिठुर रहे हें। उस समय एक कहता है-वस्त्र का प्रश्न, सिद्धात का है, दूसरा कहता है-यह एक मुद्दा है - जो महज छोटे स - काल खड और भूगोल के किसी छाटे म भाग से जुडा हे।

सिद्धात - वस्त्र के लिए इतना ही है कि वस्त्र हमारी शीत से, उष्ण से रक्षा करे, यह कसौटी पक्की है, त्रिकाल सत्य है। पर, क्या पहने, कहा तक पहने - यह सवाल रुचि का है, बदलते परिवेश का हे और अपनी सहनशक्ति का है।

भोजन बदल रहा है, वह नए-नए रूपा और ढाचा म ढल रहा है, सभी दशो मे अलग-अलग शैली से भोजन बनता हे और खाया जाता है। पर, भोजन की एक कसौटी है - वह यह ह कि भाजन हम स्वास्थ्य द, नीरोग रखे, वह हमे दीर्घ जीवन दे, शक्ति दे - फिर भी भोजन दवाई नहीं है - वह छह रसो का रसायन भी हे।

देश, काल, रुचि व अवस्था क अनुसार बदलता भाजन - सिद्धात का प्रश्न नहीं है - यह एक देश का और स्थान का सामयिक मुद्दा है।

हम मुद्दा को सिद्धात न बनावे और सारी समस्याओ को लौकिक जरूरता व परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य मे देखे तो हल निकल सकेगे।

पिता का बनाया कुआ है, यह कह कर खारा जल कायर पीते हैं, जबकि मीठे जल की गगा पास ही बह रही है।

मानवता की पोथी का पहला पाठ

कलकत्ता के कालेज के विद्यार्थी 'फोर्ट विलियम' का किला देखने गए थे। सहसा उनके एक साथी के शरीर मे पीडा होने लगी। उसने मित्रा को अपनी पीडा बताई और वह रास्ते मे बैठ गया। लडके उसकी हसी उडाते हुए आगे निकल गए।

वहा पहुच कर एक विद्यार्थी के मन मे सदेह हुआ-'कहीं सचमुच ही तो उसे पीडा नहीं है।' वह बिना देखे लौट पडा। आकर देखता है, वह छात्र बेहोश पडा है। ज्वर से उसका शरीर जल रहा है। विद्यार्थी ने दौडकर गाडी मगाई और उसे गाडी मे रख कर घर पहुचाया। अन्य विद्यार्थियो को जब पता चला तो वे बहुत पछताए। पर अब क्या हो सकता था।

उस विद्यार्थी का नाम ज्ञात नहीं, जो बीमार था। पर, जिसने पहुचाया था-उसका नाम था-नरेद्र। जो आगे चलकर ससार मे स्वामी विवेकानद के नाम से पहचाने गए।

किसी के कष्ट की बात पर अविश्वास करना - यदि यह जीवन का पहला पाठ है तो समझो जीवन की किताब गलत है, नकली और जाली है।

'विश्वास का स्वर' -यहीं से मानवता की पोथी का पहला पाठ शुरू हो।

चिंतन मनन

दुश्चक्र कही से टूटा है

यह समाज है? ना, यह भीड है-जहा धक्कम धक्का है यह झुड है-पशुओ का, यह दल है-चार, डाकुओ का, यह गिरोह है-उचक्को का। पर, समाज तो होता है-मनुष्यो का।

कहते हैं-मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज-आदमियो की भीड का नाम नहीं है-क्या मकान पत्थरो के ढेर का नाम है।

समाज का मतलब है-जहा हरेक आदमी, दूसरा के सुख का, दूसरो की सुविधा का ध्यान रखे। जहा आदमी-आपस मे कहे-पहले आप पधारे-आगे, मैं भी आया। ऐसा सहयोग जहा हो, वहा समाज बनता है।

जब तक 'मच्छ गलागल' मची है, यानी जहा बडी मछली छोटी मछली को खाने की ताक मे है। जब अमीर गरीब को, बलवान कमजोर को निगलने के लिए दौड रहा ह-वहा तो अभी 'मात्स्य न्याय' का जगली राज्य है।

पर, कभी-कभी इतिहास मे-थोडे से काल खड मे राम राज्य की झलक मिलती है। उसी की स्मृति को पाथेय बनाकर आदमी थका-थका भी चलता है।

निराशा के स्वर तो हैं -

गुण-ओगुण जिण गाव, सुणै न कोई साभलै।
मच्छ गलागल माय, रहणा मुसकल, राजिया।

-जिस गाव मे गुड-खल एक भाव हो। जहा अधेर नगरी हो। भले बुरे सब एक भाव हो। वहा रहना मुश्किल है।

यह ठीक-पर, जावे कहा।

हम कहीं न जावें, किसी को न देखे, अपने को सभाले और सहयोग का सकल्प करे। सकल्प के साथ लगेगा-दुश्चक्र कहीं से टूटा है, अधेरे मे कहीं से हलकी किरण चमकी है।

मतलब की मनुहारे

एक किसान था। उसके पास एक भैंस थी जिसका नाम था भूरी। एक बैल था-तगडा, कदावर, नाम था-कुम्भा। भैंस से उसे नित्य दूध मिलता था। हमेशा घी का लौदा पाकर वह भैंस की खूब सार सभाल रखता। भैंस को 'खल' खिलाता, रूई से निकले बिनौला (काकडा) देना नहीं भूलता। पर, बेचारे बैल की सुध ही नहीं लेता।

भैंस ने दूध देना बद कर दिया। अब उसकी सार सभाल मे फर्क आने लगा। वर्षा ऋतु आ गई। बादल गरजने लगे। बिजली चमकते ही किसान को नया चेत आया। हल जोतने की इच्छा से बैल की ओर मुडा, बैल सब समझ गया। एक बार तो उसके मन म आया-मतलबी किसान को जरा सींग से मार कर ठीक किया जाए। पर, उसकी सहज बुद्धि ने कहा-'दुनिया की यही रीत है।'

एक कवि ने इस स्थिति का यो चित्र खींचा है-

खल काकडा भूरी खाती, घी की देती लुम्भो।
इदरिया घर्रायो जद, तब याद आयो कुम्भो॥

'राजिया' ने 'स्वारथ लागि करहि सब प्रीति' का यो खुलासा किया है-

मतलब री मनवार, चुपकै लावै चूरमो।
बिन मतलब मनवार, राब न पावै, राजिया।

-दुनिया मतलबी है। हे राजिया! जब स्वार्थ साधना होता है तब तो मनुहारे कर-कर के चुपके-चुपके बढिया-से-बढिया पकवान (चूरमा आदि) लाकर खिलाते हैं, पर जब मतलब नहीं रहता तो 'चूरमा' तो दूर-राबडी तक पिलाते नहीं।

यह नीति है-जिसका अपवाद धर्म है। यहा सतजन आते हैं, कम, पर आते हैं और सहज नि स्वार्थ भाव से ही अपने को लुटा देते हैं।

सूरज की पहली किरण

आज का दिन यो ही बीत गया। कुछ न किया, कुछ न बना। अब - इतजार है, कल सुबह के उगते सूरज का।' इस प्रकार का चितन कर - आख मूद कर बैठ कर पछताने वाले नासमझ! आख खोल - अभी भी - बहुत कुछ है।

रात है, अधेरा है, आकाश मे जगमगाता नक्षत्र - मडल है। तारा का झिलमिलाता सौंदर्य है। देखता नहीं - ये तारे - आकाश के झरोखा से झाकती देवागनाओ के नेत्र हैं - जो रात भर जाग कर धरती के सौंदर्य को देख रहे हैं।

आकाश में नक्षत्र घूमकर 'रास विलास' कर रहे हैं। इस आनद से अपने अतर को भर कर - सो जा।

फिर जैसे ही सूरज की पहली किरण फूटेगी - वह तुम्हारे लिए प्रेम का नया सदेश लेकर आएगी। तुम्हारी आखो मे चमक, पैरो मे फुर्ती हृदय म उमग और हाथो मे कर्तृत्व जगेगा।

अब बीते कल की न साच, वह गया। और आने वाले कल का सपना न देख, वह पैदा नहीं हुआ।

तुम्हारे सामने आज है, अब है यह वर्तमान का पारे-सा फिसलता क्षण है। यही जीवन का निर्माता है। यही सत्य है, यही शिव है यही सुदर है।

गोरख घटै न ज्ञान

मध्यकालीन युग में जैसलमेर के भाटी कभी वीरता के लिए, कभी सुदरता और दानशीलता के लिए विख्यात होते रहे हैं। वहा के भैरूसिह भाटी की उदारता की कहानी चारो ओर फैली हुई थी।

एक चारण उनका नाम सुनकर चल पडा। रास्ते मे एक हरा भरा खेजडा (शमी वृक्ष) दीख पडा। सोचा 'भैरू भाटी' मुझे मागने पर एक ऊट अवश्य देगा। उस ऊट को खिलाने के लिए खेजडे पर चढकर लूग (जो खेजडे पर पत्तो के रूप में लगता है, जो ऊट का प्रिय खाद्य है।) चूट लू और यह विचार कर वह खेजडे पर चढ गया। 'लूग' तोड कर अपनी चादर मे इकट्ठा करने लगा।

इतने मे एक ऊट सवार निकला। उसको अजीब-सा लगा यह आदमी। उससे पूछा - 'तू क्या खेजडे को नगा करने मे लगा है-तेरे पास कोई बैल (वाहन) तो नहीं।' वह चारण विश्वास के स्वर मे कहने लगा - 'आप ठीक कहते हैं। पर मैं भैरू भाटी के पास याचना करने जा रहा हू। वह मुझे ऊट अवश्य देगा, उसके लिए 'चारा' इकट्ठा कर रहा हू।

ऊट सवार - 'वह यदि नहीं देगा - तो।' यह सुनते ही चारण की जीभ पर सरस्वती नाच उठी और उसने दृढता के स्वर मे कहा - 'क्या कहते हो, नहीं देगा - भैरू भाटी!'

छीर समदरा नहीं घटै, गोरख घटै न ज्ञान।
जे भैरू भाटी नटै तो, टूट पड़े आसमान॥

- क्षीर सागर में क्षीर घटने का नहीं। गोरखनाथ जी मे क्या ज्ञान कम हो सकता है। यदि भैरू भाटी इकार करे तो समझो ऊपर से आकाश ही टूट पडा है।' वह ऊट सवार भैरू भाटी था। उसने कहा - 'ले यह ऊट और ऊपर से लाख पसाव। मैं पैदल ही सही।'

उजाले की ओर

कहते हैं - दीप से दीप जलता है। यह कहावत है, इतिहास का यथार्थ है और अनुभव का सार है। पर, कभी-कभी शका होती है-बीच मे एक दीप है, ज्ञानी है, अच्छा वक्ता है, आसपास लाखा लाखो की भीड है - उस पर असर क्यो नहीं। ज्यो-के-त्यों। एक रत्ती भर फर्क नहीं। लगता है, आसपास दीपक नहीं थे और यदि थे तो या तो फूटे थे, या बिना तेल के थे, यदि दीपक ठीक थे - तेल भी था - तो लगन की बत्ती नहीं थी - अत 'लौ' प्रकटे तो कैसे।

कभी कभी यह भी अनुभव होता है - बीच मे दीपक नहीं है - सौ सौ पावर के जगमग करते बल्व हैं, जिनम अपना कुछ नहीं - 'पावर हाऊस' का प्रताप है। दूसरा के अनुभवो का जैसे एक मुर्दा गोदाम है, वहा कोई भी जावे, वह चाहे पूर्ण जिज्ञासु और सुपात्र हो - खाली ही लौटेगा।

कोई दीपक हो, तेल का लुटाता, बत्ती को होमता दीपक और फिर पास हो दीपक की कतार - सुपात्र, ग्रहण के आकाक्षी। तभी दीपमालिका बनती है।

चाहे इतिहास में अधेरा हो - पर हम आशा करते हैं - कोई छोटा सा काल खड हो, छोटा सा भूखड - वहा पर कोई झिलमिलाता दीप हो और दीप की ज्योति के ग्रहण करते साधक दीया की छोटी-सी-टोली। तब कहीं प्रार्थना सिद्ध होती है - अधेरे से उजाले की ओर।

इतिहास - सिद्धान्तवालो का

जीवन कोई सादा कागज नहीं है, उसमे रग हैं - कहीं वह सुरग और कहीं बदरग। फिर भी जीवन जीवन है, बदलता और गतिशील। जीवन न ग्रथो मे समाता है और न अनुभव मे। जैसे उफनता महासागर हो।

अलग-अलग अनुभव हैं, अलग-अलग तकाजे हैं। उन्हीं के सार से कहानिया बनती हैं, कहावते उमगती हैं। फिर नए युग मे नई चमक। पुराना चलता है और नहीं भी चलता है।

एक सिद्धात है, ऊचा - पर प्रिय कम। एक व्यवहार है प्रिय, जमीन पर खडा। जीवन इन दोनो पर है। कभी वह व्यवहार की ठोस धरती पर खडा होता है और कभी उडान करता है।

लगता है - ये दोनो सत्य हैं। आदर्श सत्य है - यदि व्यवहार की ठोस धरती पर खडा हो। व्यवहार सत्य है - यदि वह गगन की ओर सर ताने ताकता हो। कभी-कभी दोनो म द्वद्व खडा होता है। उस समय हमारा विवक ही पथ दिखलाता है।

हमे कहा जाता है समय देखकर चलो जमाने के रुख को पहचानो तभी नीति बनी है - 'जैसी बहे बयार, पीठ तब तैसी दीजे।' जेसे हवा चले, उसको देखकर, पीठ बदलकर, अपना मतलब पूरा करो।

लोग हैं, जो बदलते रहते हैं - जल्दी-जल्दी। एक ही लक्ष्य है - अपना उल्लू सीधा करना - यही उनकी मनोवृति है। जनाब 'अकबर इलाहाबादी' के लफ्जो मे -

जैसा मौसम हो मुताबिक उसके मै दीवाना हू।
मार्च मे बुलबुल हू, जौलाई मे परवाना हू॥

पर, इतिहास तो उन पुरुषार्थी वीरो की अमर गाथा गाता है - जो अपने सिद्धात पर जमाने की परवा न कर अतिम सास तक अटल रहते हैं।

भीतर झांको

अपने से भागो मत। अपने रू-ब-रू खडे होकर अपने को हिम्मत से देखो। दूसरो को देखते, मुह ताकते, मुहताज बने - भिखारी से कब तक रहोगे। पर, आदमी अपने भीतर झाकने, अपने से मिलने से - डरता है।

कृष्ण ने गीता ज्ञान के पूर्व अर्जुन को देखा, जो खडा होकर, चुप बैठ कर, भाग रहा था - 'स्वकर्म', 'स्व प्रवृत्ति' से दूर काम, क्रोध, मोह के बवडर मे उडता उखडता एक अदना सा आदमी।

कृष्ण ने कहा - रुक जा, 'स्व' की तलाश कर। अपने को पहचान। 'स्व' का धर्म क्या है - इसे चीन्ह।' अर्जुन सुनता गया, शका करता गया, पूछता गया - और अत मे। अपने रूप में स्थिर नया अर्जुन असली अर्जुन जन्म लेता है, जो कहता है - निर्भ्रान्त भाषा म।

'नष्टो मोह ' मेरा मोह नष्ट है। 'स्मृतिर्लब्धा' मैं अपने को भूला अब अपने को पहचान गया हू।' पर, विनम्रता भी है - 'हे अच्युत।' आपके प्रसाद से।' मैं 'स्थित' हू - ठहर गया हू, रुक गया हू - अपने 'स्व' में शात स्थिर हू। 'गत सदेह ' सारे सदेह खत्म।

इसी का नाम दूसरा जन्म है। हम चाहे गीता पढे, वेद सुनें, त्रिपिटको का पाठ करे, सूत्रजी पूजे, जपजी जपे - पर, जब तक यह न कहें - 'मैं स्थित हू'। स्थिर हू - अब।' तब तक कृत कार्यता कहा।

सच्चा चेला

'जाग मच्छदर, गोरख आया।' यह गूजती हुई गिरा जब मद हो जाती है तो दुर्भाग्य शुरू हो जाता है।

गुरु ब्रह्मा है, देवो का देव है - यह सत्य है। पर, यह भी सत्य है कि गुरु मत्स्यद्रनाथ जब कचन कामिनी के या कीर्ति के फदे म फसे तब गोरख चेले ने उनको निकाला।

योगीश्वर गोरख ने अपने गुरु की भर्त्सना नहीं की, उन्ह जगाया और कामरूप की कामिनिया के और कचन के जजाल से उबारा। गुरु चेले को चताता है तो कभी-कभी यह भी जरूरी है कि चेले भी गुरु को जगावे -

'जाग मच्छदर।'

हमारे गुरु यदि मच्छदरनाथ बन रहे हा तो हम सच्चे चेले की तलाश है।

चेले पत्थर की नाव, खेने वाले गुरु अनाडी। दाना डूबते हैं। गडबड यह है - गुरु अधे, चेले लालची।

यह निराशा का चित्र है। अधेरा है, फिर भी आशा है - पूरब के किसी-न-किसी कोने से तडकने की आवाज आवे तो तडका, पौ फटने, जैसा कुछ, समा बधे। आशा जीवन है और यात्रा का पाथेय भी।

क्षण का प्रकाश - जीवन प्रकाश

यह ससार न तो सीधा चलता है और न टेढा-मेढा। यहा तो ऐसा लगता है - जैसे गाडी का पहिया। पहिया में ऊपर और नीचे कुछ नहीं, ऊपर वाला नीचे और नीचे वाला ऊपर। एक चक्राकार गति है - विश्व की और मानव की। बस, करना इतना ही है कि बहती नदी में हाथ-पाव धो लें। जब अवसर मिले, पद मिले, साधन मिले - उसे सब के हित मे पूजा के भाव से समर्पित करें - इसी में जीवन की सार्थकता है।

करेगे, करेंगे इसमें रहे तो अवसर चूक गया और फिर खुद चुक गए - खाली, रीते। 'अवसर चूकी डूमणी, गावै ताल बेताल।'

आठै दिन पाछै गए, हरि सूं किया न हेत।
अब पछताए होत का चिड़िया चुग गई खेत॥

यह उपदेश नहीं है, सलाह नहीं है, प्रार्थना नहीं है - यह है चेतावनी।

समय का इतजार कैसा। समय तो है - न, अभी, इसी क्षण। 'बीज कै झबकै, मोती पोय ले तो पोय ले।' सत चेताते हैं, 'अरे, नासमझ! समय कहा। बिजली के कौंधे में - मोती पिरोलो तो पिरोलो।'

बिजली का एक नाम है - 'क्षण प्रभा' क्षणभर का प्रकाश। यही क्षण का प्रकाश यदि पकड में आया तो जीवन नित्य प्रकाश बना।

साई हाथ कतरणी

'मन के लड्डू खाने से भूख नहीं बुझती।' यह शत-प्रतिशत सही है। फिर भी मनोराज्य बनाना हमारी नियति है। यदि मनोराज्य बनाकर मनोरथ के रथ पर न चढे तो वास्तविक रथ भी नहीं मिलने का।

बस, सावधान इतने से रह कि जब मनोरथ-सच्चा रथ - बन जाए तो अकडें नहीं, किसी को दुत्कार नहीं - बस, कुछ कर गुजर - उस समय जीभ से नहीं, हाथ से उत्तर दे। दोनो हाथो से उलीचे - यही सयाना का काम है।

आदमी चाहता है, खूब धन हो, धन का खूब घमड करू, और दूसरे मेरे सामने हमेशा अदने रहे। पर वह यह भूल जाता है कि साईं के हाथ म 'कतरनी' है जो औकात देखकर, डीलडौल देखकर, मन के माप से - काटछाट करता रहता है।

बदो केवै मैं धन करू, करकै करू गुमान।
(पण) साई हाथ कतरणी, राखैगो उनमान।।

- सच है - इतिहास साक्षी है - ईश्वर के हाथ में कैंची रहती है, वह आदमी को डीलडौल के अनुरूप ही रखता है। उसका काट छाट का धधा चालू है।

आश्रित - सच्चा साथी

धर्मराज युधिष्ठिर स्वर्गारोहण के शिखर पर खडे हैं।

इन्द्र रथ लेकर अगवानी करने आए हैं।

इन्द्र - 'स्वर्ग आपका है। पधारें।'

धर्मराज - 'इस कुत्ते को भी बैठावें - रथ में।'

इन्द्र - 'स्वर्ग में कुत्ते का प्रवेश नहीं।'

युधिष्ठिर - 'यह मेरे आश्रित है। इसके बिना मुझे स्वर्ग अभीष्ट नहीं।'

इन्द्र - 'स्वर्ग की प्राप्ति पुण्य बिना नहीं होती। यह कुत्ता पुण्यात्मा होता तो अधम योनि में क्यों जन्म लेता।'

धर्मराज - 'मैं इसे अपना आधा पुण्य अर्पित करता हूं।'

यह सुनते ही 'धन्य हो, युधिष्ठिर! तुम धन्य हो।' यह कहता हुआ वह श्वान अपना रूप त्याग कर, धर्म रूप में प्रकट हुआ।

आश्रित के प्रति इतना अथाह सम्मान और आश्रित को ऊंचा उठाने के लिए इतना त्याग - इस कथा का अछूता व अपराजेय कीर्तिमान है।

इतिहास - कहानी से बढ़कर रोमाचक

भूस्वर्ग कश्मीर के एक राजा थे - चद्रपीड। उदार, दयालु और न्याय प्रिय। उन्होने एक मदिर बनाने का सकल्प लिया। मत्रियों ने शिल्पियो से मिलकर सुदर भूखड का चयन किया, पर, वहा बीच में एक चमार की झोपडी थी, उसको मिलाए बिना और लिए बिना मदिर की सुदरता मारी जाती।

सरकारी अधिकारियो ने चमार से जमीन खरीद कर लेना चाहा। राजा ने भी चमार को पुष्कल मूल्य देकर बेचने के लिए राजी करना चाहा और कहा कि यह पुण्य कार्य है।

चमार - 'प्रश्न झोपडी का नहीं, यह मेरे दादा पडदादा की भूमि है। यह छोटी-सी जमीन मेरी मा है। मैं किसी भी मूल्य पर मा को कैसे बेचू। मेरी झोपडी बहुत सुदर है, इसमें घडे के गलवे के बने वातायन हैं, जिनसे हवा आती है।' अत मे चमार ने राज कर्मचारियो से कहा - 'यह पुण्य कार्य है। यदि राजा स्वय आकर मेरे पास जमीन की याचना करे तो पुण्यार्थ दे दूगा, पर, बेचूगा नहीं।'

कर्मचारी तो अप्रसन्न हुए। पर, दूसरे दिन कश्मीर के धर्मात्मा राजा चमार की झोपडी पर पहुचे और उन्होने उस चमार से भूमि-दान ग्रहण किया।

- यह इतिहास है, राजतरगिणी में अकित, पर, किसी कहानी से भी ज्यादा रोमाचक।

अभावो मे भाव भरे ये

कहने को था नजीर, मगर बेनजीर था। कवि नजीर की हालत अच्छी नहीं रही तो उन्होने मदरसा खोलकर पढाना शुरू किया। लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह ने अपने कर्मचारी के हाथ भेट मे रुपए भेज कर नजीर को अपने पास बुलाया।

नजीर ने रुपए रख लिए और लखनऊ जाने का वादा भी कर लिया, पर, उन्हे उन रुपयो के कारण ग्लानि से नींद नहीं आई। शायद उन्हे रात भर अपना शेर याद आता रहा –

जर की जो मोहब्बत पड जायगी बाबा।
दु ख इसमे तेरी रूह बहुत पायगी बाबा।

सुबह उठकर उन्होने रुपए वापस कर दिए और बादशाह से कहला भेजा – 'बादशाह से मेरा सलाम कहना। नजीर फकीर तो अपनी झोपडी मे ही खुश है।' लोगो ने समझाया, पर नजीर ने एक न सुनी।

हिंदी के एक कवि ने कहा है कि यदि मुझे सम्राट् भी राजकोश का लोभ दगे तो मैं इकार करूगा और कहूगा – मेरे पास भी 'सुवरण (सुवर्ण = अच्छे वर्ण = शब्द) का कोश भरा हुआ है।' यह राजाश्रित या धनाश्रित कविया का आत्म-दर्प नहीं – यह तो स्वाश्रित पर अभावा मे भी भाव-मग्न कवियो का आत्मगौरव है।

नर मे नारायण बोले

'बंगला खूब बण्या महाराज नर में नारायण बोले।'

यह भजन है, पुराना नहीं – नया। इसमे मनुष्य शरीर को बगला बनाया है, कोई अतर नहीं पडता – इसे पुर कहे, नगर कहे, वेदो की ब्रह्मपुरी कहें या घट कहें।

भजन गाने वाले – भारत की मूल सस्कृति से जुडे हैं – जैसे किसी ऋषि के दर्शन, सत के अनुभव, लोक विश्वास बनकर बह कर आ रहे हैं। अतर इतना ही है कि बाहरी प्रभाव ग्रहण कर आज के साहिबो का 'बगला' बन गया है, यह मानव-शरीर।

पर, भीतर तो वही अखड प्रभा ही ज्योतित है। यह कोरा नर नहीं, मरने वाला मिट्टी का कच्चा भाडा नहीं – उसके भीतर झाककर देखो – 'नारायण बोल रहे हैं।'

नर में नारायण बोल रहे हैं यानी महाभारत का प्रथम शीर्ष श्लोक यहा मुखर है। गीता यहा निष्पन्न हो – नर नारायण को एक मानकर – कृष्णार्जुन सवाद को सार्थकता प्रदान कर रही है।

गायक को पता नहीं है – आदमी को विज्ञान ने केवल भौतिक पदार्थों का जमघट मान लिया है। समाजशास्त्र मे आदमी केवल समाज की मशीन का एक पुर्जा है। वह एक सामाजिक पशु है। वह यौन वासनाओ का पुज है। वह केवल कोरा अर्थशास्त्र। राजनीति के डडे से हाका जाने वाला निरा गूगा पशु।

पर, भारत की मूल चेतना – ऊपर की इन व्याख्याओ को सुनकर, याद कर, इनको लिखकर, पास होकर, नौकरी पाकर भी कहेगी – एकात मे, अपने से –

'नर की पिडी का क्या मोल!'
'नर मे नारायण बोले।'

ये स्वर भारत की अमरता के अपराजेय स्वर हैं।

पछतावे के बहत आसू

एक दयालु सत थे। उन्होने रास्ते मे पडे एक आदमी को देखा। वह धूल से भरा था गदा था। उसके मुख पर मक्खिया भिनभिना रही थीं। वह शराबी था। रास्ते मे नशे मे चूर हो गिर पडा। सत वहा रुके। पास से पानी ले आए। उसे धोया। सभाला और उन्होने कहा – 'भले आदमी, नशे मे अपना मुख क्यो बिगाडता है? इस मुख मे तो राम का निवास है।'

सत चले गए। होश आने पर नशेबाज से लोगो ने सत की बात कही तो वह बहुत प्रभावित हुआ। उसने पछतावा किया और कभी भी शराब न पीने का सकल्प किया।

एक दिन वह नशेबाज सत से मिला। यह जानकर सत बहुत गर्वित थे कि चलो किसी ने तो उपदेश सुना। उसी समय आकाशवाणी हुई – 'तू ने किसी की सेवा की, उसके बदले मे इतना क्यो चाहा कि वह बुरी टेव छोड दे। मैं तो तेरे अंत करण को जिसमे गर्व भरा है – नित साफ करता हू। प्रतीक्षा करता हू – धीरज से, कभी तो सुधरोगे।'

सत ने चिल्लाकर कहा – 'दयालु प्रभो! क्षमा कर मुझे! यह शराबी है – सच्चा है, मुझ से लाख दर्जे भला है! मैं हू – शराबी – जो सेवा मद में बावला हू। नशा छुडाता फिरता हू, मुझे आज भान हुआ कि मैं कितना नशे मे हू।'

सत के बहते आसुओं ने आज उन्हें पाक साफ बना दिया।

कजूस - धरती का भार

एक सेठ था। नामी कजूस था। बूढा हो गया। मरण घडी आई तो एक दम चौंक कर उछला। सेठानी पास ही खडी थी।

सेठानी - आप चौंक क्यो गए?

सेठ - मुझे यमदूत दिख रहे हैं, उनसे डर कर उछला हू।

यह सुनकर सेठानी ने कहा -

भाई जाण्यो न भेलपो, सगो जाण्यो ना मित।
कर जोड्या कामण कवै, जम क्यू जाण्यो कत॥

-हे पति देव! आपको तो कोई नहीं जानता। न भाई, न परिवार, न सगा न मित्र। फिर आपका पता यमदूतो को कैसे लगा।'

यह बात हाथ जोडकर कामिनी ने कही।

वह सेठ समझा कर कहता है -

हाथा दियो न हर भज्यो, कर्‌यो न पर उपकार।
बोझा मरती बापड़ी, धरती दियो बताय॥

-न तो मैंने हाथ से दिया। न भगवान् का भजन किया। न किसी का भला किया।

यह जानकर बोझो मरती बेचारी धरती ने ही यमदूतो को बताया है।'

यह कथा मूल मे कार्पण्य (कजूसी) पर व्यग्य रूप से है।

भीतर के सद्गुरु को पुकारो

'साहूकार का बेटा उठ,
बारह वर्ष हुए
जा, तेरे घर वाले इतजार मे हैं।'

सपने मे देखा – कोई देवी कह रही है।

साहूकार – 'आप कौन? जाऊ कैसे, सौ मण सूत उलझा है?'

देवी – 'मैं हू चौथ विनायक। सूत समझ सुलझा। लेने वाले लेंगे, देने वाले देगे।'

साहूकार – 'सपना साचा कि झूठा?'

देवी – 'उठने पर 'कू कू' का पगल्या मिले और मोतियो का आखा (अक्षत) तो सपना साचा नहीं तो झूठा।'

सुबह उठकर देखता है – सारी बाते सही। गद्दी पर बैठा। लेने वाले लेते गए देने वाले देते गए – सौ मण सूत जो उलझा था, सुलझ गया।

यह कहानी – आशावादी स्वर मे। फिर भी जीवन जटिल है, अभी भी तो 'सौ मण सूत' जीवन का उलझा है – जिसे सुलझाने की हम कोशिश करते हैं विज्ञान से उद्योग से और मनोविज्ञान से। जैसे कीचड से कीचड धो रहे हैं।

असल बात है – जिदगी का यह 'सौ मण सूत' भीतर से उलझा है, वहा सुलझे तो सुलझे।

तभी सत अपने सुरज्ञानी सूवे को पुकारते हैं। पद है –

'सूवा रे। उलझ्यो सौ मण सूत
कुण सुलझा जासी।'

उत्तर 'सूवारे। सत गुरु दीन दयाल
सूत बे सुलझासी।'

जिदगी के इस 'उलझे सूत' को कौन सुलझावेगा? कोई कबीर। पर, कहा। कोई 'सद् गुरु?' तलाश करो।

फिर न मिले तो भीतर के 'सद्गुरु' को पुकारो। अपने लिए स्वय दीप बनो।

कजूस - धरती का भार

एक सेठ था। नामी कजूस था। बूढा हो गया। मरण घडी आई ता एक दम चौंक कर उछला। सेठानी पास ही खडी थी।

सठानी - आप चौंक क्यो गए?

सेठ - मुझे यमदूत दिख रहे हैं, उनसे डर कर उछला हू।

यह सुनकर सेठानी ने कहा -

भाई जाण्या न भेलपो, सगो जाण्यो ना मित।
कर जोड्या कामण कवै, जम क्यू जाण्यो कत॥

-हे पति देव! आपको तो कोई नहीं जानता। न भाई न परिवार, न सगा न मित्र! फिर आपका पता यमदूतो को कैसे लगा।'

यह बात हाथ जोडकर कामिनी ने कही।

वह सेठ समझा कर कहता है -

हाथा दियो न हर भज्यो, कर्‌यो न पर उपकार।
बोझा मरती बापड़ी, धरती दियो बताय॥

-न तो मैंने हाथ से दिया। न भगवान् का भजन किया। न किसी का भला किया।

यह जानकर बोझो मरती बेचारी धरती ने ही यमदूतो को बताया है।'

यह कथा मूल मे कार्पण्य (कजूसी) पर व्यग्य रूप से है।

भीतर के सद्गुरु को पुकारो

'साहूकार का बेटा उठ,
बारह वर्ष हुए
जा, तेरे घर वाले इतजार मे हैं।'

सपने मे देखा – कोई देवी कह रही है।

साहूकार – 'आप कौन? जाऊ कैसे, सौ मण सूत उलझा है?'

देवी – 'मैं हू चौथ विनायक! सूत समझ सुलझा! लेने वाले लेंगे, देने वाले देगे।'

साहूकार – 'सपना साचा कि झूठा?'

देवी – 'उठने पर 'कू कू' का पगल्या मिले और मोतियो का आखा (अक्षत) तो सपना साचा, नहीं तो झूठा।'

सुबह उठकर देखता है – सारी बाते सही। गद्दी पर बैठा। लेने वाले लेते गए, दने वाले देते गए – सौ मण सूत जो उलझा था, सुलझ गया।

यह कहानी – आशावादी स्वर मे। फिर भी जीवन जटिल है, अभी भी तो 'सौ मण सूत' जीवन का उलझा है – जिसे सुलझाने की हम कोशिश करते हैं, विज्ञान से, उद्योग से और मनोविज्ञान से। जैसे कीचड से कीचड धो रहे हैं।

असल बात है – जिदगी का यह 'सौ मण सूत' भीतर से उलझा है वहा सुलझे तो सुलझे।

तभी सत अपने सुरज्ञानी सूवे को पुकारते है। पद है –

'सूवा रे! उलझ्यो सौ मण सूत
कुण सुलझा जासी।'
उत्तर 'सूवारे! सत गुरु दीन दयाल
सूत बे सुलझासी।'

जिदगी के इस 'उलझे सूत' को कौन सुलझावेगा? कोई कबीर! पर, कहा! कोई 'सद् गुरु?' तलाश करो।

फिर न मिले तो भीतर के 'सद्गुरु' को पुकारो। अपने लिए स्वय दीप बनो।

मुस्कान - समस्याओ का जवाब

काली अधेरी अमावस है। पर, बधु! यहा रुको नहीं, झुको नहीं, यह तो जीवन-नाटक का एक पर्दा है। नेपथ्य मे चादनी रात नववधू की तरह सज रही है क्या इस अधेरे मे उसके पायल की झकार सुनाई नहीं दी।

कल से ही देखो, चादनी आ रही है - चादनी छिटकती रहेगी, बढती रहेगी। तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है - पूनम का पूरे चाद का कलश लिए - रुपहली रात।

यही शैली है - जीने की।

दु ख की रात आखिर कितनी ही लबी हो, ढलेगी ही और सुख का नया सुबह उगेगा।

दु ख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात।

पतझड है - पर, देखो, वसत के नए पत्ते आने को उमगने को लालायित है।

दु ख को जबाब देना है, वह जवाब है - एक मुस्कान! दु ख की भयकरता को देखकर भी यदि हमारे अधरो पर मुस्कान की एक उजली रेखा खिच गई तो दु ख नौ दो ग्यारह हो जाएगा।

जापान के कविवर नागोची का यह भाव हमे सदा जगाते रह -

'जब जीवन के कगारो की हरियाली सूख गई हो, पक्षिया का कलरव मौन हो गया हो, मित्र व आत्मीय जन मुझे काटा की राह मे अकेला छोड गए हा - तो हे प्रभो! मुझ पर इतना अनुग्रह करना कि मेरे होठो पर हास्य की एक उजली रेखा खिच जावे।'

इस स्थिति म भी यह मुस्कान - कोरी मुस्कान मात्र नहीं है, यह विजय की लहराती पताका है।

चितन मनन

घमडी का सिर नीचा

श्रीकृष्ण ने गरुड को आज्ञा दी कि यक्षराज कुबेर के सरोवर से सौगधिक कमल ले आओ। गति के घमड वाले गरुड जा पहुचे और पुष्प चयन करने लगे। महावीर हनुमान् जी ने रोका – 'कुबेर की आज्ञा के बिना तुम क्या फूल तोड रहे हो और किसके लिए तोड रहे हो?'

गरुड – 'हम भगवान् श्रीकृष्ण के लिए ले जा रहे हैं, इसलिए किसी से पूछने की जरूरत नहीं।' इस बात को सुनकर हनुमानजी गरम हो गए और गरुड को काख मे दबा कर कमल लेकर द्वारका की ओर उड चले। हनुमान्जी के वेग से द्वारकावासी घबरा गए। सुदर्शन चक्र रक्षक बन कर आए। हनुमान्जी ने उनको दूसरी काख मे दबोच लिया।

श्रीकृष्ण ने अपनी रानिया से कहा – 'प्रचड वीर हनुमान् आ रहे हैं। इनकी गति को रोकना कठिन है। मैं बनता हू राम और आप मे से कोई सीता बनो। शीघ्रता करो।'

श्रीकृष्ण राम बन गए पर, सीता? पट्टमहिषिया सीता न बन सकीं। भगवान् श्रीकृष्ण ने राधा को याद किया, वे तुरत सीता बनकर वाम भाग मे शोभित हुई।

हनुमान् ने देखा – आराध्य राम-सीता विराज रहे हैं। वे चरणो में गिर पडे। कृष्ण (रामवेश मे) – तुम्हारी काख मे क्या किलबिला रहे हैं?' हनुमान – 'एक बेचारा पखेरू है – राम भजन में बाधा डाल रहा था, इसलिए इसे पकड लिया। यह चक्र सा खिलौना है – यह मेरे साथ टकरा रहा था इसलिए इसे दबोच लिया।'

आप को शिव भक्त कुबेर के यहा से पुष्प की चाह थी तो मुझे आज्ञा देते इस बेचारे पखेरू को क्या भेजा?' श्रीकृष्ण – 'मैं प्रसन्न हू। जाओ भजन करो – मजे मे।'

यह सारी लीला श्रीकृष्ण की थी।

गरुड को गति का, सुदर्शन को शक्ति का और पट्टमहिषिया को सौंदर्य का गर्व था। वह एकदम चूर्ण हो गया।

कहावत है – 'घमडी का सिर नीचा।'

भीतर का शिशु

रोम का एक चित्रकार ऐसे व्यक्ति का चित्र बनाना चाहता था, जिसके मुख से भोलेपन, सरलता और अबोध निरीहता के भाव प्रकट हो। वर्षों की तलाश के बाद एक बालक मिला। उसे बैठाकर चित्रकार ने उसका चित्र बनाया।

उस चित्र की हजारो प्रतिया बिकीं और वह चित्रकार मालामाल हो गया।

१०-१५ वर्ष के बाद वह चित्रकार एक ऐसे व्यक्ति का चित्र बनाना चाहता था - जिसके चेहरे पर क्रूरता, धूर्तता और स्वार्थ लिप्सा फूटी पडती हो। ऐसा व्यक्ति उसे कारागार मे ही मिल सकता था। वह आज्ञा लेकर जेलखाने मे गया। वहा उसे एक व्यक्ति दिखाई दिया - जिसके चेहरे पर क्रूरतम भावो को प्रकट करने वाली रेखाए उभरी थीं। चित्रकार रुका और कहने लगा - 'मैं आपका चित्र बनाना चाहता हू। आप बैठ जाए।' कैदी - 'मेरा चित्र क्यो?' चित्रकार - 'मैंने एक चित्र बनाया था - भोलेपन का, उसने मुझे प्रसिद्धि दी और धन भी मिला। अब नए ढग का चित्र बनाना है।' चित्रकार ने पहला चित्र दिखाया। कैदी फूट-फूट कर रोने लगा और कहने लगा - 'यह भी मेरा ही चित्र है।' चित्रकार - 'फिर तुम्हारी यह दशा क्यो?' कैदी - 'कुसग के कारण।' कैदी के पछतावे के आसू रुकते नहीं थे।

चित्रकार को लगा - 'कैदी के भीतर का शिशु जिंदा है।' चित्रकार अब एक क्रूर को नहीं, किसी सत को देख रहा था।

मत चूकै चौहान

चार बास चौबीस गज, अगुल अष्ट प्रमान।

एते पै सुलतान है, मत चूकै चौहान॥

- हम यहा इतिहास ढूढ रहे हैं, पर इस दोहे मे छिपा जो जीवन का सदेश है - इस मिथक मे जो जीवन को सफल बनाने का इशारा है, उसे समझ - इसी म इस दोह का मथितार्थ (मथने से प्राप्त मक्खन) है।

एक कवि हमे भविष्य के दूरगामी लक्ष्य को प्राप्त करने को कह रहा है - कविता अनुमान नहीं, वह भविष्य को देखने वाली आखो की सच्चाई है।

मत चूकै चौहान।'यह हमें बार-बार चेताता है - चूकना मत। क्या हम इसे सुनते हैं। इतिहास मे हम कितनी ही बार चूक गए। ठीक मौके पर यदि हम ठीक ढग से, सही सज्जा सामग्री के साथ, तैयार रहे - तो लक्ष्य-भेद सुकर है।

अब भी कुछ बिगडा नहीं। राष्ट्र को विश्व मे सही स्थान मिले। इसके लिए हमारे पास क्या नहीं है - परपरा है - प्रकृति है, प्रतिभा है, नए उगते भारत की अनत शक्ति सभावनाए हैं - बस, एक काम करे - मतभेद चाहे हो - मन भेद न हो। सभी लक्ष्य के लिए समर्पित हो।

यह उपदेश है, आदेश है और उससे भी बढकर एक चेतावनी है -

मत चूकै चौहान।'

आइए इतिहास को दुहरावे नहीं - आगे और आगे - बढावे। 'आगे' का अर्थ केवल 'आगे' ही नहीं - ऊचा भी है। इतिहास जब आगे बढता है साथ ही ऊचा उठता है तो राष्ट्र अपनी पूरी अस्मिता प्राप्त करता है।

अक्रोध की विजय

एक भले व्यक्ति के सबध में यह प्रसिद्ध था कि वे किसी भी स्थिति में क्रोध नहीं करते। पर, दुष्टों का यह स्वभाव होता है कि वे सयमी व्यक्ति को सयम च्युत करने में पैशाची आनद का अनुभव करते हैं। एक दुष्ट ने उस व्यक्ति के नौकर से कहा 'यदि तुम अपने मालिक को उत्तेजित कर सको तो तुम्हें मैं पुरस्कार दूगा।'

सेवक जानता था, उसके मालिक को अपने पलग का बिछौना सिकुडा अच्छा नहीं लगता है। नौकर ने रातवाला बिछौना ज्यों-का-त्यों रहने दिया। सुबह मालिक ने कहा – 'रात बिछौना ठीक नहीं बिछा था।' नौकर – 'मैं भूल गया, दूसरे काम में उलझा था।'

मालिक ने देखा-'यह नौकर ऐसा ही करता है। यानी भूलता नहीं, जानबूझ कर भूल करता है।' मालिक ने अत में कहा – 'मालूम होता है-तुम बिछौना ठीक करने के काम से ऊब गए हो, पर, मैं नहीं। इधर मेरी आदत सिकुडे बिछौने पर सोने की हो रही है।'

स्वामी की इस क्षमाशीलता से प्रभावित हो, नौकर पैरों पर गिर पडा और सारी बात कह सुनाई।

स्वामी मुस्करा कर रह गए। इस प्रकार अक्रोध की विजय हुई।

उजड्ड युवक

एक दिन एक घमडी युवक ने इगलैंड की महारानी एलिजाबेथ के सम्मान भाजन तथा प्रख्यात शूर सर वॉल्टर रैले को द्वद्व युद्ध के लिए ललकारा। उस समय द्वद्व युद्ध की चुनौतियो को अस्वीकार करना कायरता मानी जाती थी।

सर रैले तलवार चलाने मे अत्यत निपुण थे, फिर भी भीतरी दया के कारण उस युवक की चुनौती अस्वीकार कर दी। इस पर उस असभ्य युवक ने घृणापूर्वक सर रैले के मुख पर थूक दिया।

बिना किसी उत्तेजना के रैले कहने लगे – 'जितनी सरलता से अपने मुख पर पडे इस थूक को रूमाल निकाल पोछ सकता हू, यदि उतनी ही सरलता से मानव-हत्या का पाप पोछ सकता तो अवश्य मैं तलवार निकालकर तुम्हारे साथ भिड जाता।'

वह उजड्ड युवक – उस वीर के तेज से दमकते चेहरे को देख न सका और हारा-हारा फीकी आखा को नीचा कर क्षमा याचना की मुद्रा मे खोया खडा रहा।

कथनी करनी बने

'श्रीमन्! हम हार गए हैं।' एक उच्च सैनिक अधिकारी ने निराशा और पराजय के भार से दबे स्वरा मे सेनापति नेपोलियन बोनापार्ट से कहा।

नेपोलियन – 'सेनापति! तुम हारे हो, पर, सेना नहीं हारी।' 'लो, मैं सभालता हू – सेना की बागडोर।' यो कहकर वीर श्रेष्ठ नेपोलियन ने अपना घोडा भागती सेना के बीच दौडाया। भागती हुई सेना ने जब नेपोलियन को घोडे की बाग पकडे – वीर मुद्रा मे देखा तो सेना मे जोश उमड पडा। 'जय-जय' का नाद कर भागती हुई सेना रुकी ही नहीं, चौगुने उत्साह से शत्रु पर टूट पडी। इधर शत्रु की सेना, विजय की खुशी मे ढीली गफलत म थी।

नेपोलियन ने अपनी सेना के साथ इतने जोश से प्रत्याक्रमण किया कि शत्रु उखड गया और विजय-श्री ने नेपोलियन का वरण किया।

'असभव शब्द मूर्खों के कोश मे है।' कहने वाले नेपोलियन के चरित्र ने भी अनेकश इस कथन की सत्यता उजागर की है।

'कथनी' तो 'करनी' से ऊर्जा प्राप्त करती है। कबीर साहब ने साख भरी है –

कथनी मीठी खाडसी, करनी विष की लोय।
कथनी तज करनी करै, तो विष ते इमरत होय॥

कहना सरल है – चीनी सा मीठा, पर, कर के दिखाना विष है। यदि कोई कहना-बकना छोडकर करके दिखावे तो विष से अमृत हो जाता है।

नरक और स्वर्ग

'नरक बनाने मे हम जितनी मेहनत करते हैं, अक्ल खर्च करते हैं और बुद्धि के हथौडे को चला कर तोडफोड करते हैं – उससे बहुत कम मेहनत करके, कम पसीना बहाकर और प्रेम से दूसरे को आगे बढने का मौका देकर-स्वर्ग का निर्माण कर सकते हैं।'

यह कथन हवाई नहीं, धरती का कालसिद्ध अनुभव है।

ताल्स्ताय महोदय देख रहे हैं – एक व्यक्ति जल्दी उठता है, बीबी-बच्चो के लिए दौडता, धक्के खाता, जीविका के लिए इधर उधर मान अपमान को सहता जिंदगी से जूझ रहा है – नहीं जानता, इससे कम तकलीफ उठाकर वह ईसा हो सकता था।

तेली की 'घाणी' से जुता बैल चलता है, आखो पर प्रगति के धोखे की पट्टी बाधे-चलता है, 'ज्यू घाणी के बैल को घर ही कोस पचास' यो गोल-गोल चक्कर काटता जिंदगी भर चलता है, पर नतीजा – 'वही ढाक के तीन पात। कहीं पहुचा नहीं।'

यह बैल यदि सीधा चलता एकदम सीधा तो कैलास पहुच जाता और भगवान् आशुतोष शिव इसे 'नादिया' बना लेते।

क्या इसी प्रकार हम अपने बनाए जाल मे लडते-झगडते एक दूसरे को कोसते, चलकर भी चल पाते हैं?

नरक मे – श्रम है, पसीना है, खून है – पर, सहयोग, निश्छल प्रेम, सही दृष्टि और सुव्यवस्था नहीं है।

थोडा सा प्रेम, ठीक पथ प्रदर्शन और साथ साथ चलने बढने का सहकार भाव – यही तो स्वर्ग है।

–

टूटे को जोडे

हमारा मन उससे फट गया। ऐसा कहने वाले लोग जीवन को दूभर बना देते हैं। मन क्या फट गया और क्या नहीं फट गया। मन कोई दूध है कि फट गया - अब जुडे नहीं, मन मिले नहीं।

चाहे यह दोहा अनुभव के यथार्थ को प्रकट करता हो -

काच कटोरो नैण जल, मोती दूध 'र मन।
इतणा फाट्या ना मिलै, लाखा करौ जतन॥

-काच का कटोरा, आखो का पानी (हया), मोती, दूध और मन फटने के बाद नहीं मिलते, चाहे लाख कोशिश करो।

पर, इस अनुभव से जीवन रुका है, टूटा है, गिरा है। हम जीवन की प्रगति के आकाक्षी हैं, प्रकाश की ओर हमारी यात्रा है। तब हम सत कबीर नया रास्ता दिखाते हैं -

सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुरै सौ बार।
दुर्जन कुंभ कुम्हार का, एकै धका दरार॥

सोना, सज्जन और सत जन - सौ बार चाहे टूट जावे, फिर मिल जाते हैं। हा, दुष्ट और कुम्हार का घडा फूटा कि फूटा - फिर जुडने का नहीं। यही पथ जीवन के विकास का है - जो पथ सोने का है और साधु सज्जन का है। कविवर रहम ने भी हमें समझाया है -

रूठे सजन मनाइए, जो रूठे सौ बार।
फिर फिर मुकता पोइए, टूटे मुकता हार।

टूटे दिलो को मिलाकर आइए हम इतिहास को नए उजले शीर्षक से लिखे।

चितन मनन

कृष्ण - सुरंगा महोत्सव

भगवान् कृष्ण के जीवन मे हजारो रग हैं, वेसा सुरगा चरित कहा! पर, एक बात साफ है। वे प्रतिक्षण जागरूक हैं। वे प्रत्येक क्षण को अमृत का क्षण आनद का क्षीर-सागर बना - झूम कर पीते हैं। जीवन लीला है, केवल गीत सगीत। एक महोत्सव! उनके अधरा की मद मुस्कान सदा विश्व को मोहित करती है।

लीला पुरुपोत्तम सदा बढते रहे, अनासक्त होकर। जो छोडा, वह छोडा, पीछे मुडकर देखा ही नहीं। वे पूर्ण रूप से जीवत रहने का पाठ पढाते हैं।

सदा जाग्रत्, सदा उल्लसित, भोग रागो के बीच निष्काम अनासक्त! वे थे रासेश्वर, रसेश्वर, मुरलीवादक, फिर भी योगेश्वर और पाचजन्य का घोप करने वाले। एक कर्मयोगी। 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' भारतीय आस्था का यह उद्‌गार है।

भादो की काली मह अधेरी रात में भगवान् का प्राकट्य - भारतीय जीवन के लिए श्याम घन के बरसने जैसा, जीवन को हरा भरा करने वाले चौमासे जैसा, बिजली की तरह प्रकाश भरने जैसा और इद्रधनुप की तरह नयनाभिराम दृश्य जैसा है। जैसे अनत अपार 'गगन सदृशम्।'

भक्ति पक्की कब?

एक भगवद् भक्त यात्रा के लिए निकले। उन्हाने देखा, एक पर्वत गुहा के बाहर लोगो की भीड है। सभी लोग एक सत के दर्शन के लिए बाहर खडे थे। सत गुफा से बाहर निकले।

एक-एक व्यक्ति अपनी व्यथा-कथा कहता गया, महात्मा स्पर्श करते हुए आगे बढते गए। लोगो को विश्वास था कि यह स्पर्श उनकी शारीरिक बीमारियो को मिटाने में समर्थ है।

वह भक्त भी आगे बढा और कहने लगा - 'महात्मन्! मेरा मन दिन-रात व्याकुल रहता है। आप मेरे मनोरोग को दूर करने की कृपा करे।' यो कहकर उस भक्त ने सत के चद्दर का कोना पकड लिया।

सत हडबडा कर कहने लगे - 'छोड मुझे शीघ्र! परमात्मा देख रहा है कि 'मेरा भक्त मेरा पल्ला छोड, दूसरे का पल्ला पकड रहा है।' अपनी चद्दर छुडा कर वे शीघ्रता से गुफा मे चले गए।

भक्त में अनन्यता हो, तभी भक्ति पक्की।

सन्त का प्रभाव

एक संत कहीं जा रहे थे। एक दुष्ट पीछे हो लिया और उनको गालियां देने लगा। संत चुपचाप गालियां सुनते गए, चलते गए।

आगे कुछ घर दिखाई पड़े। संत रुक गए और कहने लगे – भैया! जो कुछ कहना हो, यहीं जी भर कर कह लो। मैं खड़ा हूं। आगे जो घर वाले लोग हैं, वे मेरे प्रति प्रेम रखते हैं, थोड़ी सहानुभूति भी रखते हैं। तुम्हारी बातें सुन कर तुम्हें तंग कर सकते हैं। मैं नहीं चाहता कि किसी को मेरे कारण जरा भी परेशान होना पड़े।

दुष्ट व्यक्ति लज्जित हो गया और क्षमा मांगने लगा।

भक्ति पक्की कब?

एक भगवद् भक्त यात्रा के लिए निकले। उन्होने देखा, एक पर्वत गुहा के बाहर लोगो की भीड है। सभी लोग एक सत के दर्शन के लिए बाहर खडे थे। सत गुफा से बाहर निकले।

एक-एक व्यक्ति अपनी व्यथा-कथा कहता गया, महात्मा स्पर्श करते हुए आगे बढते गए। लोगो को विश्वास था कि यह स्पर्श उनकी शारीरिक बीमारियो को मिटाने मे समर्थ है।

वह भक्त भी आगे बढा और कहने लगा – 'महात्मन्! मेरा मन दिन-रात व्याकुल रहता है। आप मेरे मनोरोग को दूर करने की कृपा करे।' यो कहकर उस भक्त ने सत के चद्दर का कोना पकड लिया।

सत हडबडा कर कहने लगे – 'छोड मुझे शीघ्र! परमात्मा देख रहा है कि 'मेरा भक्त मेरा पल्ला छोड, दूसरे का पल्ला पकड रहा है।' अपनी चद्दर छुडा कर वे शीघ्रता से गुफा मे चले गए।

भक्त मे अनन्यता हो, तभी भक्ति पक्की।

सन्त का प्रभाव

एक सत कहीं जा रहे थे। एक दुष्ट पीछे हो लिया और उनको गालिया देने लगा। सत चुपचाप गालिया सुनते गए, चलते गए।

आगे कुछ घर दिखाई पडे। सत रुक गए और कहने लगे – भैया! जो कुछ कहना हो, यहीं जी भर कर कह लो। मैं खडा हू। आगे जो घर वाले लोग हैं, वे मेरे प्रति प्रेम रखते हैं, थोडी सहानुभूति भी रखते हैं। तुम्हारी बाते सुन कर तुम्हे तग कर सकते हैं। मैं नहीं चाहता कि किसी को मेरे कारण जरा भी परेशान होना पडे।

दुष्ट व्यक्ति लज्जित हो गया और क्षमा मागने लगा।

ये आँसू – अनमोल मोती

लोग हैं, जो बाजार का रुख देखते हैं, खरीददारो की माग देखते हैं, बदलती रुचि के अनुसार बदलते हैं। इसलिए ऐसी जगह दूकान लगाते हैं, जहा सबके हाथ पहुचे।

पर, महापुरुषो का रास्ता अलग, मुकाम अलग, लोगो को जो 'खरीदना चाहिए' – उसकी दुकान लगाते हैं – दूर, कहीं दूर, जहा वे होते हैं – सच्चे ग्राहक वहा यदा-कदा पहुचते हैं। यहा भीड नहीं है, न काफिले हैं, न वाह-वाही है, पर जिदगी के असली सामान है, न नकली और न चमकीले।

कुमाशे – दस्तजदे-शहर-व दिह ज मन मतलब।
मताये-मन हमा दरयायी अस्त या कानी।

– शहर और गाव की चीजे मुझसे मत तलब करो। मेरी तो सारी सामग्री समदर की है या खान की है अर्थात् मेरे पास या तो मोती है या जवाहरात।

यह उन महापुरुषो का, फक्कडो का कूचा है, जहा आकर लोग आसू खरीदते हैं। वह बाजार दूसरी तरफ है – जहा जाकर लोग मौज शौक खरीदने मे मशगूल हैं।

फिर ये आसू करुणा बन कर सूने सूखे जीवन पर बरसते हैं –

सय का निचोड लेकर तुम, सुख से सूखे जीवन मे
बरसो प्रभात हिमकन सा, आँसू इस विश्व-सदन मे।

– आसू यशोधरा के शब्दो मे 'नीरस रसा न हो, इसी से नीर देती हू।' ये आसू – ये ही तो अनमोल मोती हैं।

चंदन की कुटकी

एक राजा शिकार की तलाश में घोड़ा दौड़ाता, साथियों से बिछुड़ कर, अनजाने जगल में भटक गया। भूख-प्यास का मारा – रात में एक झोंपडी पर पहुचा। झोंपडी में लकडहारा था। उसने अतिथि का स्वागत किया। रूखा-सूखा खाकर, राजा रात भर वहीं रहा।

राजा ने पूछा-'कैसे गुजारा करते हो?'

'मैं जगल से पेड काटता हू, लकडी जलाकर कोयला बनाकर पास के नगर में बेचता हू। यों परिवार पालता हू।'

राजा उस गरीब पर खुश हो गया। राजा ने उसे अपने चदन के बगीचे में रख दिया।

बात पुरानी हो गई। एक दिन राजा चदन के बगीचे में पहुचा। राजा ने वहा जाकर देखा – सारा बगीचा उजाड है। वह लकडहारा वैसा ही गरीब। दो पेड खड़े हैं – वह लकडहारा कुल्हाड़ी लिए है। राजा ने उसे पहचान कर कहा-'भले आदमी। क्या कर रहा है?' कुल्हाडी लिए वह आया-'आपकी दया से खूब काम चला, अब बस ये दो पेड हैं – आगे की चिंता है।'

राजा हैरान। इतना ही पूछा – 'चदन के पेडा का क्या हुआ?'

'मालिक। मैं इनको काटता, फिर उनको जला कोयले बना कर बाजार में बेच देता।'

राजा उसकी मूर्खता पर मन ही मन खीझे, प्रकट में इतना ही कहा- 'इन पेडों को काट मत, न इनकी लकडी से कोयले बना। लकडी के टुकडे बाजार में बेच।'

राजा ने अपना आदमी भेजकर उसे चदन के पेडों को लगाना सिखाया। कहना न होगा – वह लकडहारा धीरे धीरे मालामाल हो गया।

हमारे राष्ट्र की सारी धरती भी तो चदन के बगीचे से कम नहीं। हम भी इस धरती की उपज को कोयला बना कर कहीं नष्ट करते न रहें। देखना है-हम बाजार में कोयला बना कर बेचते हैं या चदन के जरा से टुकडे का पूरा मोल वसूलते हैं।

'चदन की कुटकी भली।'

धृति और उत्साह

ज़िंदगी चाहे कितनी ही उलझनो से भरी हो या लुभावनी, मन भावनी हो - यहा हम अपनी ही हिम्मत से, अपने ही बलबूते पर चलना पडता है। जहा हमने आख मूदकर किसी पर भरोसा किया, वहीं डूबे। कदम-कदम पर सभल-सभल कर चलना पडता है। तूफान आते हैं, पर वे हमारे साहस से बडे नहीं होते।

कुछ लोग तो अपनी हिम्मत से
तूफा की जद' से बच निकले।
कुछ लोग मगर मल्लाहो की
कश्ती के भरोसे डूब गए।

समस्याए आवेगी, ये हमारे पुरुषार्थ के लिए चुनौतिया हैं। हम धीरज भी रखना है। धृति और उत्साह ये दो पहिए हैं - जिसके सहारे जीवन का रथ सतत गतिशील रहता है। हम विश्वास रखे - 'ईश्वर की चक्की धीरे चलती है, मगर बारीक पीसती है।'

जद' = चोट

सूर्य जिधर से निकले - वही पूर्व

सूरज पूर्व मे निकले, इसका सूरज पर कोई प्रतिबध नहीं। सूरज तो सूरज है, वह जिधर से निकलेगा, वही पूर्व है। सूर्य पूर्व का गुलाम नहीं, पूर्व दिशा उसकी वशवर्तिनी है।

इसी प्रकार इतिहास के निर्माता - जिधर से चलते हैं, उधर ही नया पथ बन जाता है।

लीक-लीक गाडी चलती है, पर, सिह, सपूत-उजड चलते हैं, वे जिधर ही जाते हैं - उनके चरण चिह्नो से मानव जाति के उद्धार का, विकास का नया मार्ग बन जाता है।

जब रूढि बन जाती है, तब वह परपरा नहीं रहती, विकास के लिए बाधक हो जाती है तो कृती पुरुष-शलाका पुरुष - नए पथ का निर्माण करते हैं। ये पथिकृत् ऋषि हैं, महावीर, बुद्ध, शकराचार्य, दयानद, गाधी प्रभृति।

न्याय के उद्भट विद्वान् उदनाचार्यजी ने श्लाघा के स्वर म कहा है-

उदयति निशि यस्या भानुभान् सैव पूर्वा
न हि तरणिरुदेतिदिक् पराधीनवृत्ति ।

- सूर्य जिधर से निकलता है, वही पूर्व है। सूर्य पूर्व दिशा म निकले, इसका वह गुलाम नहीं।

शूरता का गौरव

दो राजपूत थे। दोनो वीर थे। किसी बात पर उनमे शत्रुता ठन गई। दानो मौक की तलाश मे थे। एक दूसरे से लडने, मरने-मारने पर उतारू।

एक दिन एक राजपूत बैर निकालने के लिए तलवार लेकर निकला। शहर के बाजार से जा रहा था। उस समय एक मतवाला हाथी उन्मत्त बना सूड फटकारता, दौडता हुआ उधर आ निकला। सारा बाजार सुनसान हो गया। लोग किनारे दुबक गए। वह राजपूत भी किनारे खडा हो गया। भागने वाला मे से एक का बालक राह मे छूट गया। हाथी जैसे ही सूड से उठाकर उस बच्चे को चीर फाडकर फेकने के लिए लपका - अचानक एक व्यक्ति बिजली की तरह बच्चे को लेकर दूर सही सलामत निकल आया। हाथी चला गया। लोग 'धन्य धन्य' कहकर उस आदमी को घेरे खडे थे।

वह राजपूत भी वहा आया, उसने देखा - यह वही दूसरा राजपूत है - जिससे लडने और जिसको मारने निकला था। इस दृश्य को देखकर वह राजपूत द्रवित हो आगे बढा, उसकी आखा म आनद, कृतज्ञता व पछतावे के आसू छलक रहे थे। उसने उसके सामने पहुच कर तलवार पैरा म रख दी। 'मैं तुमको मारने निकला था। पर, तुमने रक्षा करने मे जो अद्‌भुत वीरता दिखाई है - वह युद्धा की वीरता से सौ गुनी बढकर है। मुझे क्षमा करो।'

यह सुनते ही दूसरा राजपूत आगे बढा और उसने चरणो मे झुकते हुए राजपूत को अपने आलिगन म बाध लिया।

शूरता तभी गौरवमयी बनती है - जब वह दुर्बला, असहाया की रक्षा के लिए प्राणा का पण लगा देती है।

श्रोताओ के भेद

चतुर्मास आ जाता है तो सारा देश जहा खेतो मे मेढको की टर्र टर्र सुनता है, परिंदे के गीत सुनता है, पेड पौधो के मर्मर से झूम उठता है, वहीं गाव-गाव नगर-नगर सत महतो के प्रवचना से उफन पडते हैं।

पर, श्रोता? श्रोता वही हैं, जिनके पास जिज्ञासा का पेदा और बुद्धि की खिडकी हो। कई श्रोता मिट्टी के होते हैं, जिनमे ज्ञानाकुर निकलते हैं। पर, प्राय पत्थर तुल्य हैं – जहा से छींटे उछलते हैं – यानी जो तर्क वितर्क करते हैं। कपडे तुल्य श्रोता जल्दी ही सूख जाते हैं – वैसे के वैसे कोरे।

यो वक्ताओ की भी नासमझी होती है – जो परिषद् की परीक्षा किए बिना अपनी ही हाकते रहते हैं। श्रोताओ के अनेक भेद हैं – कई चालनी की तरह होते हैं – उपदेश को निकालने वाले। कई महिष (भैंसा) वत् जो सभा को बिगाडते हैं। कई श्रोता हैं – जोक की तरह, केवल दोष ग्राही। देखने मे आता है।

कोई ऊध रहा है, कोई बीच मे उठ आता है, कोई बाते करता है, कोई अपनी जाति की तारीफ मे लगा है, कोई अपने 'गोडो' के बीच मे अपना माथा घुसेडे बैठा है।

'केइ बैठा ऊघाय, जाय केइ अधबिच ऊठी।' वक्ता अच्छा पर श्रोता नासमझ तो ऐसा लगता है – जैसे शृगार करके वधू अधे प्रिय के पास चली।

वक्ता श्रोता बाहिरा, बाच गमाया बैण।
सझ सिगार पिऊ पै चली, पिउ का फूटा नैण॥

ऐसी स्थिति मे भी जब वक्ता के सामने दस-पाच सुयोग्य श्रोता मिल जाते हैं तो प्रवचन नए जीवन का प्रस्तोता बन जाता है। प्रवचन स्थल से चारो ओर सेवा, प्रेम और उदारता की किरण छिटकती हैं।

ऐसा बोलिए कि सुनने वालो के दिलो मे बैठे, ऐसा सुनिए कि बोलने बाला उभरे।

कहने सुनने की गर्म बाजारी है, मुश्किल है मगर पराए दिल मे
ऐसा सुनिए कि कहने वाला उभरे, ऐसा कहिए कि बैठ जाए दिल मे।

जो चीज बूंद मे गई

दिल्ली के तख्त पर चाहे जहागीर बैठा हो, पर राज तो करती थी बेगम नूरजहा। बादशाह कहा करता था – 'बस, एक प्यासा मलका नूरजहा के हाथ का। फिर, सल्तनत जाने और जाने नूरजहा!' एक दिन नूरजहा ने अपने नए आविष्कार रूप गुलाब के इत्र को बादशाह के सामने पेश किया। बादशाह उसकी खुशबू से बावला हो गया और अपनी अगुली से एक बूद ले जरा सी चखी।

नूरजहा अपनी दासियो के साथ हस पडी – बादशाह की नासमझी पर और बेकद्री पर। बादशाह मन में शरमा गया।

बिहारी की यह अन्योक्ति जैसे यहा चरितार्थ थी –

करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
चुप रहि रे गधी! तुही, इतर दिखावत काहि॥

बादशाह के मन म यह बात खटकी। फिर पूरा इतजाम कर एक बार गुलाब के इत्र से हौज भरा। दरबारियो को बुलाया। शहर के कद्रदा लोगो का जमघट लगा। बादशाह इत्र की जैसे बरसा कर रहा है। सारे मुसाहिब बादशाह की इस दरियादिली पर बेहद खुश थे, 'वाह वाह' की महफिली दाद!

बादशाह ने सोचा – अब नूरजहा पुरानी बात को भूल जाएगी – मेरी इस रईसी पर बाग-बाग हो उठेगी। पर, नूरजहा ने धीरे से इतना ही कहा –

'जहापनाह' जो चीज बूद मे गई
वह हौद से नही लौट सकती।

बादशाह का नशा काफूर हो गया।

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करो किन कोय।
रहिमन बिगरै दूध को, मथै न माखन होय॥

अपढ और कुपढ़

'साक्षरा ' जरा उलट कर पढिए – हो गया, राक्षसा !' हमारे देश मे अपढ हैं – पर, इनसे कोई खतरा नहीं। ये भोले हैं, चालाकी भी करेगे तो जरा सी, पर, राक्षस बने पढे हुए-कुपढ लोग अधिक खतरनाक हैं। कुपढ – यानी जो पढे हैं, पर – जिनमे सस्कार नहीं, जो अह केंद्रित हैं, स्वार्थ को ही चरम मूल्य मानते हैं और अपनी उपाधि को केवल अपनी भोग-लिप्सा की पूर्ति का हथियार बनाना चाहते हैं।

ये कैसे पढे-लिखे-युवक हैं जो अपने विवाह के समय नववधू के मा-बाप को दहेज के नाम पर डाकू की तरह लूटते हैं और फिर मनमाफिक पूरा न मिलने पर दहेज की बलिवेदी पर प्रेम को स्वाहा कर देते हैं। सोचा तो यह था कि पढाई यदि फैलेगी तो सारी बीमारियो का इलाज हो जाएगा। पर, मर्ज बढता ही गया ज्यो-ज्यो दवा की।

परमहसदेव इन सस्कार विहीन पढे-लिखे लोगो को कहा करते थे – 'मणिधर सर्प' – जो मणि के प्रकाश मे केवल अपना शिकार ही ढूढते हैं।

साक्षरा उलटकर राक्षसा बनते हैं। पर, यदि हम अपढ एव कुपढ के स्थान पर सुपढ बनावें तो 'सरस' लोग समाज मे आवेगे – जो उलटकर भी 'सरस' से 'सरस' ही बनेंगे।

कोरी शिक्षा नहीं – साथ मे दीक्षा हो। 'शिक्षा-दीक्षा' एक साथ। दीक्षा का अर्थ है – शिक्षा के अनुसार जीवन ढालने का सकल्प। तभी राष्ट्र विकास के नये क्षितिज प्राप्त कर सकेगा।

हमे सेहत से मतलब है

भोगी और रोगी ठगे आते हैं। पर जब राष्ट्र ठगा जाता है और मानवता ठगी जाती है – तो मन में विचार उठता है। यह विचार कभी क्रोध बनता है, तो कभी असतोष और कभी क्रांति का लावा बन कर सबको जलाता, झुलसाता बर्बाद कर देता है।

प्रयोग हो, परीक्षण हो – पर, इनकी सीमा है। कभी-कभी वर्षों तक परीक्षण होता है, एक पीढी परीक्षण के दौर में खत्म हो जाती है। फिर पछतावे के साथ कहा जाता है – हम भटक गए। फिर नया परीक्षण प्रारभ! यह दुश्चक्र कब तक!

आखिरकार हमें यह तय करना है – हमें मनुष्य से प्रेम है। आदमी के लिए धर्म, वाद, कला, साहित्य और दर्शन है। मनुष्य से बढकर, श्रेष्ठतर कुछ नहीं। यही हमारा प्रस्थान बिंदु है।

दवाई वही ठीक है, जो हमे नीरोग करे, स्वस्थ रखे। दवाई के लिये हम नहीं, हमारे लिए दवाई है। यह ध्रुव सत्य है।

शायर अकबर इलाहाबादी की यह उम्दा बात हम न जाने कब समझेगे –

हकीम और वैद्य यक्सा है, अगर तद्बीर अच्छी हो।
हमें सेहत से मतलब है, बनफ्सा हो या तुलसी हो।

महत्त्व है, तद्बीर का यानी बीमारी के सही निदान का, उपचार का।

सच्चे करामाती - ये

दुनिया मे सदा करामात की कहानिया कही-सुनी जाती हैं। करामात, करिश्मा या चमत्कार होते भी हैं या नहीं - यहा बुद्धिमानो मे मतभेद है। प्रकृति के नियम हैं, उन्हीं के अधीन सब होता है, हमारा अज्ञान ही करामातो मे विश्वास रखता है, यह एक मत है। पर, दूसरा मत दैवी, अलौकिक, अप्राकृतिक बातो का विश्वासी है।

पर-करामात तो प्रतिदिन जीवन में घटती हैं। करामाती है-बादल, सागर का खारा पानी पीता है और ससार को सुधा-सा मीठा जल पिलाता है। गाय खाती है घास और देती है - अमृतोपम दूध। जमीन एक छोटी सी गुठली पाती है और सबको आमो से तृप्ति प्रदान करती है।

इन वृक्षो को देखो, धूप सहते हैं, सर्दी-गर्मी झलते हैं, ऊपर पछिया को, नीचे पथिको को विश्राम देते हैं। और तो और 'इतत ये पाहन हनत, उतत वे फल देत।' इधर उन पर पत्थर मारे जाते हैं और उधर से वे फल देते हैं।

ये सत, ये फकीर, ये भक्त या ये कलाकार - क्या चमत्कार या करिश्मे नहीं। दुनिया चाहे इन्हे अपमान, भूख, उपेक्षा, घृणा और मौत दे - पर, ये देते हैं, प्रेम और स्नेह। जीने के सबल सम्बल।

भगवान् शिव ने गरल पान किया - ये सत जन स्वय गरल पीते हैं, पर, साथ ही अपनी वाणी का अमृत भी पिलाते हैं। विष का अमृत म रूपातरण क्या करिश्मा नहीं।

विनाश का मूल कारण - फूट

जिन्होने विश्व की सस्कृतिया का गहन अध्ययन किया है, उनका कहना है कि ससार की कोई भी सस्कृति बाहरी आक्रमण मात्र से नष्ट नहीं हुई - वह नष्ट हुई है - फूट से, परस्पर कलह से और भोग-विलास के आधिक्य से। भीतरी दुर्बलता ही मूलत विनाश का कारण है।

चौपड के खेल मे जब तक दो 'स्यार' (गोटी) एक खाने म रहती है, दूसरा खिलाडी चाहे कितना ही होशियार हो, उनको नहीं मार सकता। पर, जैसे ही खिलाडी को उन गोटियो को अलग करने की जरूरत पडती है और उस खाने मे एक गोटी रह जाती है तो उसे मारा जा सकता है। इसका यह मतलब है कि जेसे ही एकता टूटती है, सगठन बिखरता है तो नाश हो सकता है।

कहावत है -

"जुग (दो की जोड़ी) कोनी मरै।
जुग टूट्या ही 'स्यार' मरै।"

इतिहास पढना उसको दुहराने के लिए नहीं है, उससे पाठ पढकर नया कदम सही दिशा मे उठाने है 'जगत में घर की फूट बुरी' यह भारतेदु बाबू की गीतिका मात्र चेतावनी है शक्ति दुर्गा जैसी शक्ति। ।

माथा ही कैलास

हमारा यह शरीर ही शैल है, इस शैल के शिखर का नाम है - कैलास। कैलास का कहा ढूढ रहे हैं। हमारा माथा, हमारा मस्तिष्क, यही पिड मे कैलास है।

सुनते हैं-कैलास पर भगवान् शिव का सदा आनद नृत्य होता है, वे सदा अट्टहास करते हैं और उनके जटाजूट से गगा बहती है।

हमारा यह माथा - तभी कैलास बनेगा, जब हम हमेशा शिव कामना - शुभ, मगल, और कल्याण की कामना रखें, वहा सदा आनद नाचे। प्रेम की शात गगा बहे - जिससे पाप, शाप और ताप बह जावे।

हमारे मदिरो मे जब पूजा होती है तो पुजारी भगवान् के चरणामृत की बूदा से भक्तों के माथे को भिगोते हैं - यानी य छितरती बूदें कहती हैं - 'मदा माथे को शात रखो, ठडा रखो, तभी आचार-व्यवहार लोक-मगलकारी होगे।'

घोटालो की एरका

समुद्र का किनारा, प्रभास क्षेत्र। यादवा के वश कुकुर, भोज आदि एकत्र हुए। मैरेयक नाम की मदिरा का पान किया। आपस मे झगडने लगे। भगवान् कृष्ण ने मना किया, पर कौन सुनता। सभी मतवाले।

उन्हाने जो चुपचाप घोटाले किए थे, वे दीखने मे तुच्छ घास के रूप मे चारा ओर उगे हुए थे। भगवान् ने अपना सुदर्शन चक्र काम मे नहीं लिया। एक मुट्ठी घास को उखाडा। कुकर्मो की उस घास का नाम था-एरका।

एरका नाम ततो मुष्टि कोपाज्जग्राह केशव।

- केशव ने क्रोध मे भर कर एरका नाम की घास मुट्ठीभर उखाडी।

कृष्ण के हाथ मे आते ही वह घास घनघोर मूसल बन गई। वज्र के समान भयकर लोहे का मूसल बन गई। उसमे मदोन्मत्ता का विनाश हुआ।

'तदभून्मूसल घोर वज्रकल्पमयोमयम्।'

प्रतीक्षा रहती है, किसी केशव की - जिसके हाथ मे कुकर्मो की एरका घास मूलस बनती रहे और सख्या न जीत कर, दस्यु गिरोह न जीत कर, सच्चाई जीते।

'सत्यमेव जयते' केवल शीर्षवाक्य न रहे,
धरती पर उतरता भी रहे।
'यदि तुम आधी बोओगे,
तो बवडर की फसल काटनी पडेगी।'

अमृता कला

अमावस की रात है। चाद गायब है। पर, निराश न हो। अधेरी रात के पर्दे के पीछे चादनी राते सज सवर रही हैं। चद्रमा के पास केवल १५ कलाए नहीं हैं, एक अमृता कला सोलहवीं कला है, जिसके बल पर वह दूज का चद्र 'अ' के आकार से भगवान् शिव के ललाट पर शोभित होकर उन्हे शशिशेखर बनाता है और स्वय वद्य बनता है।

यही अमृता कला व्यक्ति के पास आत्म विश्वास है, परिवार के पास इस कला के नाम अखड प्रेम और त्याग हैं। राष्ट्र के पास यही अमृता कला उत्सर्ग का सदेश देती है।

यही अमृता कला सकट मे धैर्य है, अधेरे मे यही रोशनी है।

भारतीय सस्कृति के पास इसी अमृता कला का सदेश है – तू आत्मा है, 'नैन छिदति शस्त्राणि' के रूप मे यह जीवन को अभय बनाती है। यही अमृता कला जीवन मे श्रद्धा बन कर सदेश देती है –

'दु ख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात।'

इस अमृता कला मे जीवन का आशावादी शाश्वत स्वर-सगीत मुखरित है।

अभ्यास ही सिद्धि

साधक जब आगे बढना चाहता है तो उसके मार्ग में नौ अतराय आते हैं। ये अतराय या ये विघ्न कोई बाहर से नहीं आते, अपने हाथो की करतूते हैं -

(१) व्याधि - कोई बीमारी आ जावे, शरीर, इद्रिय समूह और चित्त मे

(२) स्त्यान - सुस्ती, साधनों में प्रवृत्त न होने का स्वभाव

(३) सशय - अपनी शक्ति और फल प्राप्ति मे डावाडोल हो जाना

(४) प्रमाद - बीच बीच में लापरवाही बरतना

(५) आलस्य - तमोगुण की अधिकता से शरीर और चित्त में भारीपन आना

(६) अविरति - ससार के भोगों के प्रति आसक्ति

(७) भ्राति दर्शन - सही को गलत मानना

(८) अलब्धभूमिकत्व - साधन करने पर भी सफलता का न दीखना अधीरता का बढना

(९) अनवस्थितत्व - मिलने पर भी वहा चित्त का अधिक समय न ठहरना। चचलता का अनुभव। ये सब चित्त के विक्षेप हैं। साधक लगा रहे, अभ्यास करता रहे, डिगे नहीं। स्मरण रहे, कुआ खोदना है - कहीं गड्ढे खोदते और निराश हो नए गड्ढे खोदने में जिदगी अकारथ न चली जावे।

'कोटि जनम लगि रगर हमारी।' यह रगर, यह अनवरत अभ्यास, यही सिद्धि है।

मन चंगा तो –

तीर्थ का अर्थ है, जो हमे तैरा दे, ससार सागर से पार करा दे। इसलिए हमारे मानस मे तीर्थ-यात्रा का महत्त्व है। तीर्थ दो प्रकार के हैं, एक भौतिक, हरिद्वार आदि बाह्य। दूसरा तीर्थ है, चरित्र का, शुद्ध भावा का, नैतिक आदर्शों का।

सत्य तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थं इद्रिय निग्रह।
सर्वभूत दयातीर्थं, सर्वत्रार्जवमेव च।
ज्ञान तीर्थं धृति तीर्थं पुण्यतीर्थं उदाहतम्
तीर्थाना अपि तत्तीर्थं विशुद्धि मनस परा।

सत्य, क्षमा, इद्रिय सयम, सब प्राणियो पर दया, सब जगह आर्जव यानी सरलता का भाव, ज्ञान, धृति, पुण्य आदि सभी तीर्थ हैं। पर, तीर्थो का भी तीर्थ सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है-मन की निर्मलता।

इसीलिए सत कबीर ने कहा –

यदि चचल चित्त तीर्थ यात्रा पर जावे तो
'एको पाप न उतरियो, सो मन लादे और।'

वहा पाप तो एक भी उतरा नहीं और सैकडो मन पाप और लाद लाया।

तीर्थ-यात्रा के महत्त्व की एक सीमा है। सच तो यह है-'मन चगा तो कठौती मे गगा।'

चरित-पठन चरित-गठन

महापुरुष आते हैं, उन्हे हम खो देते हैं। यह एक जीवन की विडबना है। हम उन्हे पूजते हैं, देवता बनाते हैं, उनके लिए विशाल मदिर बनाते हैं - इस प्रकार उनको हम अपने जीवन से दूर पटक देते हैं।

कभी हम उनको तुच्छ समझते हैं, उनके जीवन काल मे उनका मूल्यबोध नहीं हो पाता - हमे पता भी नहीं चलता कि हमारे आसपास कोई है, एक विभूति है, है एक मनुष्य-शानदार मनुष्य।

किसी को पता न चला उसके कद का अदाज।
जो आसमान था मगर सर झुका कर चला॥

हम महापुरुषो को खोते आए हैं, कभी उन्हे तुच्छ समझ कर, कभी शैतान मान कर और कभी देवता बना कर।

महापुरुषो के चरित-पठन को हम अपने चरित-गठन के रूप मे पहरेदार बनावे, उनकी खूबियो को अपनावे, उनकी खराबियो से दूर रहे। यही जीवन को सफल बनाने का तरीका है।

चाहे राजहस न रहे हो, पर, हम हस की विवेक-वृत्ति को, नीर-क्षीर न्याय को, अपनावे। 'सार सार तो गहि रहे, थोथा देय उडाय।' ऐसा छाज (सूप) हमारा गुरु बने।

कोई सुनता नहीं

महाभारत समाप्ति पर है। भगवान् वेदव्यास अपना अतिम निष्कर्ष सुनाने को हैं। कोई सुनता नहीं, क्या सुनावे, किसे सुनावे! वे जरा उत्तेजित हैं, नाराज भी, क्षुब्ध भी। अत में वे भुजाओ को ऊचा उठाकर, चिल्लाकर कह रहे हैं।

ऊर्ध्व बाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति माम।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्म कि न सेव्यते॥

"मैं अपनी भुजाओ को ऊचा उठाकर चिल्लाकर कह रहा हू, कोई मुझे सुनता क्यो नहीं।

मैं इतना ही तो कह रहा हू, धर्म से यानी नियम से खूब धन कमाओ, सयम से भोग भोगो – ऐसा धर्म जो अर्थ-काम को सुलभ करता है, उस धर्म को अपनाते क्या नहीं?"

हम दौडते हैं, धर्म का भूलकर धन के लिए, मौज शौक के लिए – पर, नतीजा है, अशाति, दु ख, मानसिक रुग्णता, अकेलापन और आधिया।

धर्म एक व्यवस्था है, जिसका मधुर अकुश दौडते मदोन्मत्त हाथी को सीधे सुराह चलाता है। हमारे चार पुरुषार्थ हैं, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। हम चाहते हैं – बीच के दो, अर्थ और काम – पर, पहला नहीं। तो ये दो भी नहीं।

इसी आशा मे अटका

'साई घोरन के अछत गदहन पायो राज।' नीतिकार गिरधर कविराय की पत्नी बडी समझदार थी, उसने यह बात अनुभव से लिखी या ज्ञान की तीसरी आख से देखकर लिखी – कहना, मुश्किल है।

'हे स्वामी! कैसी विचित्र बात है कि घोडा के रहते हुए – गधा को राज्य मिल गया।'

इतिहास की यह बडी विडम्बना है कि कभी-कभी सुयोग्य व्यक्ति को हटाकर, अयोग्यो की बन आती है। बेचारी कोकिला चुप हो जाती है, उसकी सुरीली पचम तान सुनने के लिये कान तरस जाते हैं – 'अब दादुर वक्ता भये, हम हि पूछिये कौन।'

अब तो मेढक ही वक्ता हो गये हैं, उनकी टर्र-टर्र की पुनरावृत्ति। – फिलहाल सगीत समारोह की यही नियति है।

साथ ही कविवर बिहारी का यह आश्वासन भी है –

इहीं आस अटक्यौ रहतु, अलि गुलाब के मूल।
हैहैं फेरि बसत ऋतु, इन डारनु वे फूल॥

– गुलाब की जड में भ्रमर इस आश में अटका रहता है कि सुअवसर आने पर वसन्त ऋतु म इन फूल पत्तियो से रहित उदास डालिया म फिर वे गुलाबी खुशबूदार फूल अवश्य झूमेंगे।

क्रोध - एक प्रदूषण

संतो का कथन है-'क्रोध करना कठिन है, क्रोध न करना आसान है।' हो सकता है, यह बात सुनने मे प्रिय हो और वास्तव मे भी सही है।

हमे कहीं जाना है, उसके लिए तैयारी करनी पडती है-सामान मार्ग-व्यय, ठहरने के स्थान और शारीरिक, मानसिक सरजाम। पर कहीं जाना नहीं है, उसको साधना कठिन नहीं। नहीं जाना है, बस, बात खत्म। क्रोध नहीं करना है, बात खत्म है। पर, क्रोध करना-एक पूरी तैयारी है। क्रोध करने के लिए सामने कोई चेतन हो, उसके प्रति अरुचि का भाव हो, अरुचि के लिए नई पुरानी बातो की, सही गलत बातो की याद का जागरण हो-तब कहीं क्रोध की आग सुलगाने के लिए खुला मैदान मिलता है।

क्रोध हमारा स्वरूप नहीं, बाहर से आया प्रदूषण है। प्रेम की मुद्रा म, शात वृत्ति मे-हम जीवन भर एक-से बैठे रह सकते हैं। पर-क्रोध की उत्तेजना को देर तक बनाए रखना असभव। क्रोध हमारे शरीर को तनाव मे लाता है। इससे रक्त-प्रवाह मे तेजी आती है। पाचन-क्रिया मद हो जाती है।

आयुर्वेद की दृष्टि मे क्रोध प्रज्ञापराध है, हमारी बुद्धि की विकृति। क्रोध का मतलब है-आधि, क्रोध का मतलब है-व्याधि। क्रोध का मतलब है-जीवन सग्राम मे पराजय। क्रोध एक ऐसा जुआ है, जिसमे जीवन हारा जाता है।

सच, क्रोध करना कठिन है, बहुत कठिन।

मनुष्यता की ओर बढ़े

पानी का घोडा / पवन असरवा / ढरकि परै जस ओस कै बुदवा॥

व्यक्ति के जीवन का यह एक दर्दनाक तथ्य है, व्यक्ति ऐसे ढरक पडता है, जैसे ओस की बूद। पर, महिमा तो व्यक्ति की ही है। ओस की एक बूद इतिहास के प्रवाह में ऐसी आती है, जैसे सारा सागर ही सिमटा हो। इन बूदों से यह सृष्टि सदा के लिए मुक्ताभा लिए जग-मग है।

भगवान् राम, लीला पुरुषोत्तम कृष्ण, करुणावतार बुद्ध, तपोयोगी महावीर, प्रेमी ईसा, अहिसा के पुजारी गाधी-इतिहास के काल खड में महज बूदें हैं। पर, इन विभूतियो से रक विश्व वैभव भरा है।

शात, निर्विकार सागर-सा निर्गुण निराकार ब्रह्म चाहे शाश्वत हो, पर, हमारे काम आता है-उसका व्यक्त रूप व्यक्ति-छोटा, क्षण भगुर। यही क्षण शाश्वत को चेतना लिए है।

व्यक्ति को-इस बूद को कौन निगल सकता है-न इतिहास, न काल, न सागर!

आदमी बुलबुला है पानी का/और पानी की बहती सतह पर/टूटता भी है, डूबता भी है/फिर उभरता है, फिर से बहता है।

पर, जीवन का फौलादी सत्य यह है-न समदर निगल सका इसको/ न तवारीख तोड पायी है। -गुलजार

इसीलिए वेदव्यासजी का यह वेदवाक्य सदा जीवत है-यह परम गुह्य रहस्य है। 'न हि मानुषात्छ्रेष्ठतर हि किंचित्।'

-मनुष्य से बढकर कुछ भी श्रेष्ठतर नहीं। बस इतना-सा करणीय है, मनुष्य से हम मनुष्यता की ओर बढें।

करणी पार उतरणी

पुराना भजन है। जैसे आज भी नया। कोई लाभ उठावे तो ठीक, नहीं तो अपनी करणी, पार उतरणी। सतो का काम है-चेताना, आवाज देना-

'नेकी करो, बदी मत झालो,
घणी अनीति, नही आछी।'

नेकी करो, बुरे काम मत करो। अनीति थोडी तो चलती है, आटे मे नमक बराबर। पर बहुत अनीति जरा भी ठीक नहीं।

पर, हमे जब पद मिल जाता है, तो समझते हैं - यह सदा रहेगा। सावन के अधे को हरा-हरा सूझता है। राज करते अधिकारी का मनोभाव रहता है-

''राज करतो राजा बोल्यो, ओतो राज म्हारो थिर रेसी।''

राज करने वाला राजा कहता है - यह तो राज्य मेरा स्थिर रहेगा। झूठी आशा, मृग-तृष्णा मे भटकते मरते हैं हम।

सत की यह चेतावनी है, यह उपदेश नहीं, सच्चाई है -

साचो साचो न्याव करो मेरे दाता,
फेर करणने कुण आसी?

इसलिए, हे मेरे दाता! सच्चा न्याय करना। फिर कहा तू और कहा यह मौका! फिर-कौन आएगा। मौका है, सुनहरा। पर, सुनता कौन है? हाथ मलते रहते हैं।

'आछे दिन पाछे गए, हरि से किया न हेत।
अब पछताए होत का, चिड़िया चुग गई खेत।'

सब जाएगा, रहेगी नेकी-बदी!

क्या ले आयो, क्या ले जासी।
नेकी बदी रह ज्यासी।
रामानदजी रा भणै कबीरा, खाली हाथा उठ ज्यासी।

तुम हो प्रकाश

एक फकीर के पास भीड जमा हो गई। सब पूछने लगे – ''बाबा कोई ऐसी बात बताओ, जो जिंदगी भर याद रहे और जो अंधेरे मे चिराग का काम करे।

बाबा – 'बताओ, तुम किससे बने हो? आग से या खाक से?'

''बाबा! सुनते तो ऐसा हैं, हम सब मुट्ठी भर खाक से बने हैं।'

'पर, व्यवहार से तो ऐसा नहीं लगता। बात बे-बात गुस्से की आग से जलते रहते हो। मूर्खो! जरा विचारो। यह आग दुश्मन को कभी जलाएगी या नहीं, पता नहीं, पर, तुम तो इस में जल-भुन कर मरने के पहले ही खाक हुए जा रहे हो।'

'अरे, खाक से बने पुतलो! कुछ पूछना हो तो खाक से पूछो। तो सुनो, कान खोल कर सुनो।

खाक की तरह बर्दाश्त करो।
अपनी बुराई पर खाक डालो।
दुश्मनी को खाक में दबा दो।
फिर देखोगे तुम न खाक हो और न आग-
तुम हो प्रकाश!'

श्रम और विश्राम

फ्रांस के बादशाह चौथ हेनरी के पास स्पेन का एक राजदूत रहता था। बादशाह एक दिन अपने एक बच्चे को पीठ पर सवार कराकर घुटनो के बल चल रहे थे। बच्चा प्रसन्न होकर चाबुक मारता और एड़ लगाता था। राजदूत ने यह देख लिया। बादशाह ने राजदूत से पूछा – 'तुम्हारे बाल बच्चे हैं?' राजदूत ने कहा – 'हा हैं।' बादशाह ने कहा – 'तब ठीक है, जरा इस कमरे मे एक चक्कर और लगा लू।'

जीवन है-जहा श्रम है, कर्म है, जहा मनोरजन, आमोद-प्रमोद और विनोद भी है। ईसा ने कहा – 'बच्चो को मेरे पास आने दो, क्योकि स्वर्ग का राज्य ऐसा ही होता है।' पर, कहीं अति न हो। इन दोनो पलडो को जीवन म बराबर रखना है। किसी ओर झुकने नहीं देना है। अति सर्वत्र वजयेत्। श्रम और विश्राम, विश्राम और श्रम-यही जीवन रथ के दो चक्र हैं।

ऐ बुलबुल! मौसमे बहार की खबर ला

संसार है-जिसके हजारो रग हैं। इसमें सार भी है, और यह नि सार भी है, यह सुरग भी है और बदरग भी! यहा स्वर्ग भी है और नरक भी। पर, हम ने इसे रात दिन जहरीली बातो से और अधिक विषाक्त बनाया है, कटु बनाया है, और घिनौना बनाया है।

हम जरा बात का लहजा बदल कर देखें। तय करे, जहा भी हम अच्छाई देखेंगे, उसी की चर्चा करेंगे। एक दिन करके देखें, परखे। जहा भी आप को शील दिखाई दे, विनम्रता दिखाई दे, कर्तव्यपरायणता का दृश्य दीख पडे - उस पर आप मुग्ध हो, प्रेम से पीठ सहलावे, प्यार भरे उत्साह के दो मीठे बोल बोले, उचित प्रशसा करने में कजूसी न करे तो लगेगा - यह दुरगी दुनिया कितनी खुबसूरत हो रही है।

नि सदेह बुरी बाते हैं, पर - उनकी चर्चा करना क्या आपके ही जिम्मे है? जब ऐसी खबर देनी हो, जो दूसरे का दिल बिगाडे, वह आप ही क्यो देते हैं? क्या चुप्पी नहीं साधी जा सकती। वह बुरी खबर किसी दूसरे से सुन ही लेगा -

ऐ बुलबुल! मौसमे बहार की खुश-खबरी ला।
बुरी खबर उल्लू के लिए छोड दे।-

शेख सादी।

किस कदर खुश नजर आते हैं मेरे शहर के लोग,
आज अखबार किसी ने न पढा हो जैसे।

धन की तीन गति

निःसन्देह कीडी (चींटी) खूब सचय करती है, पर जब तीतरो को पता चलता है तो वे वहा इकट्ठे हो जाते हैं और चींटियो के सारे खजाने को लूट लेते हैं।

इसीलिए यह कहावत है –

"कीडी सचै तीतर खाय,

पापी को धन परलै जाय।"

– चींटी सचय करती है, तीतर खा जाते हैं। इसी प्रकार पापी कजूसी से धन इकट्ठा करते हैं, पर, धन का सदुपयोग नहीं करते। नतीजा? बाप-दादा के इकट्ठे किए हुए धन को कपूत गुलछर्रों मे उडा देते हैं।

धन की तीन गति हैं – दान और भोग, नहीं तो तीसरी गति तैयार है – 'नाश।'

ऐ बुलबुल। मौसमे बहार की खबर ला

संसार है–जिसके हजारो रग हैं। इसमे सार भी है, और यह नि सार भी है, यह सुरग भी है और बदरग भी। यहा स्वर्ग भी है और नरक भी। पर, हम ने इसे रात दिन जहरीली बातो से और अधिक विषाक्त बनाया है, कटु बनाया है, और घिनौना बनाया है।

हम जरा बात का लहजा बदल कर देखे। तय करे, जहा भी हम अच्छाई देखगे, उसी की चर्चा करेगे। एक दिन करके देखे, परखे। जहा भी आप को शील दिखाई दे, विनम्रता दिखाई दे, कर्तव्यपरायणता का दृश्य दीख पडे – उस पर आप मुग्ध हो, प्रेम से पीठ सहलावे, प्यार भरे उत्साह के दो मीठे बोल बोले, उचित प्रशसा करने मे कजूसी न करे तो लगेगा – यह दुरगी दुनिया कितनी खुबसूरत हो रही है।

नि सदेह बुरी बाते हैं, पर – उनकी चर्चा करना क्या आपके ही जिम्मे है? जब ऐसी खबर देनी हो, जो दूसरे का दिल बिगाडे, वह आप ही क्या देते हैं? क्या चुप्पी नहीं साधी जा सकती। वह बुरी खबर किसी दूसरे से सुन ही लेगा –

ऐ बुलबुल। मौसमे बहार की खुश-खबरी ला।
बुरी खबर उल्लू के लिए छोड दे।–

शेख सादी।

किस कदर खुश नजर आते हैं मेरे शहर के लोग,
आज अखबार किसी ने न पढा हो जैसे।

धन की तीन गति

निःसन्देह कीडी (चींटी) खूब सचय करती है, पर जब तीतरा को पता चलता है तो वे वहा इकट्ठे हो जाते हैं और चींटिया के सारे खजाने को लूट लेते हैं।

इसीलिए यह कहावत है -

''कीडी सचै तीतर खाय,
पापी को धन परलै जाय।''

- चींटी सचय करती है, तीतर खा जाते हैं। इसी प्रकार पापी कजूसी से धन इकट्ठा करते हैं, पर, धन का सदुपयोग नहीं करत। नतीजा? बाप-दादो के इकट्ठे किए हुए धन को कपूत गुलछर्रों मे उडा देते हैं।

धन की तीन गति हैं - दान और भोग, नहीं तो तीसरी गति तैयार है - 'नाश।'

समय समय की बात

राजा नल का राज छिन गया। दमयती बिछुड गई। वे एकाकी इधर-उधर अपने दु ख के दुर्दिनो को काटते छिपे रहकर भटक रहे थे।

एक बार उन्हे गहरी प्यास लगी। एक गूजरी उधर से निकली। उसकी मथानी मे छाछ थी। राजा ने प्यास बुझाने की गरज से थोडी सी छाछ चाही। पर, गूजरी इतनी-सी छाछ के लिए गर्वीली हो-राजा की ओर उपेक्षा से ताकने लगी। नल समझ गए और इशारे से इतना ही कहा-

'गरबै मत ना गूजरी, देख मटूकी छाछ।
नौ सौ हाथी झूमते, राजा नल कै बार॥

- अरी गूजरी! इस मथानी की जरा-सी छाछ पर गर्व मत कर। देख, राजा नल के द्वार पर नौ सौ हाथी झूमते थे। समय की बात है। आज वह दर-दर भटकता है। फिर तू किस खेत की मूली है।

पता नहीं-गूजरी का क्या व्यवहार हुआ।

पर, इतिहास साक्षी है, रथ चक्र की तरह सब के दिन कभी ऊपर, कभी नीचे, होते रहते हैं।

बस-गर्व न हो। इतना ही सत्य है।

सेरा सोनो पैरती, मोत्या मरती भार।
सो कासी रै चौहटै, हरिचद बेची नार॥

जो भारी भारी वजनी सेरो सोने के गहनो से लदी रहती थी। मोतियो जडे आभूषणो के भार से दबी रहती थी। एक दिन राजा हरिश्चद्र को दुर्दिन पडने पर ऐसी अपनी महारानी को काशी के चौराहे पर बेचने को विवश होना पडा।

परपरा की पूजी

कभी-कभी काई मुर्गी जब अडा देती है तो इतन जोर से चीखती चिल्लाती है -

'जैसे उसने किसी नए नक्षत्र को जन्म दिया है।' जीवन मे अनेक बार मौलिकता का, अद्भुत अभिनव सर्जना का, नए मोड देने का और पुराने को तुच्छ दिखाकर विश्वामित्र की तरह नई सृष्टि करने का दावा किया जाता है।

पर, यह स्पष्ट है कि सूरज की जहा तक किरणे जाती हैं-वहा तक मौलिक कुछ भी नहीं। गणित का एक मेधावी छात्र था, उसन नए फार्मूले निकाले-पर, जब वह किसी विशाल पुस्तकालय मे गया तो वह आश्चर्य और लज्जा से भर गया के मे बातें तो सैकडो वर्षों पहले इससे अधिक स्पष्टता और अच्छे ढग से लिखी गई हैं।

परपरा पूजी है, इसी के बल पर प्रगति के चरण आगे बढते हैं। हम प्राचीन के प्रति कृतज्ञ हो, नवीन उपलब्धिया के प्रति विनम्र हा और भविष्य के प्रति आशान्वित।

डींग हाकना

एक गाडी की धुरी पर एक मक्खी बैठी थी। गाडी तेजी से चली जा रही थी। रास्ता धूल से भरा था। इससे गर्द-गुबार से आसमान भर गया। इतने मे मक्खी ने अपने पख जोर से फडफडाए और बैलो से कहने लगी - "आज मैंने तेजी से पख फैलाए हैं, इनके कारण इतनी धूल उडी है कि सूरज तक छिप गया है।" यह सुन कर बैल मौन रह कर चलते रहे। मक्खी ने विचारा - "ये बैल मुझ से जलते हैं।"

इसी प्रकार जब कोई कार्य होता है तो दूर बैठे आलसी निकम्मे लोग बहस से भर जाते हैं जैसे इस सभी सृष्टि को ये ही चला रहे हैं। वे फिर डींग हाकते हैं और उनके दस पाच अपने आदमी हकारिए (हा करने वाले) उनके वहम को पुष्ट करते हैं।

पर, यह तो इतिहास देवता जानता है कि कौन कर रहा है। गीता ने चेताया - यदि कोई सचमुच बडा काम हो जाए तो भी कर्तापन का अहकार न करो, अपने को निमित्त मात्र समझो।

गोवर्धन को उठाया तो था भगवान् कृष्ण ने अपनी छिगुनी अगुली पर - फिर भी गोप बालो से कहा - 'भैया। अपनी लकुटिया भी नीचे लगा कर भार सभाले रहे।'

एक है - जो बिना किए श्रेय बटोरने की हिमाकत करता है और एक है जो प्राप्त श्रेय को बाटता है। श्रेय को बाटना इसी मे श्रेष्ठत्व है।

चितन मनन

जीवन के पच प्रदीप

जीवन देवता की इस आरती मे ये पच प्रदीप हमेशा जगमगाते रहे, कहीं कोई मन्द न पडे–इस ओर हम सतत जागरूक रहे।

लो, यह पहला प्रदीप है – स्वाधीन कर्तृत्व का। यह जगत् कठोर है, वह अपनी लौह मुष्टिका मे हमे कैद रखना चाहता है। वह हमे घेरता है, कभी धन से, कभी अस्त्र से – पर, हमारा यह दीप कभी मन्द न पडे। हम मौलिक रहे, सभी बन्धनो को छिन्नभिन्न कर।

दूसरा प्रदीप – रचना शक्ति को सभाले। हमारे पास चाहे निकृष्टतम धातु क्यो न हो, हम उसे अपनी रचनात्मक रसायन विद्या से स्वर्ण प्रतिमा मे बदल सकते हैं।

तीसरा प्रदीप – आशा, साहस और आनन्द का मुक्त निर्झर है यह जीवन, इसी का सन्देश वाहक बने – यह तीसरा प्रदीप। जैसे 'अपोलो' की सुवर्ण सारगी यौवन के राग और स्वर का अक्षय कोप है – उसी तरह है हमारा यह जीवन।

चौथा प्रदीप – जो कहता है – सब सभव है। आगे बढो – हिमालय के दुर्गम शिखर और सागर के अतल तल तुम्हारी प्रतीक्षा मे हैं। ये सितारे तुम्हे बुला रहे हैं। 'सितारो से आगे जहा और भी हैं, अभी इश्क के इम्तिहा और भी हैं।' जितने साहस के काम हुए हैं, हो रहे हैं, होगे – इसी दीप की अमर वर्तिका की यह प्रेरक उजली भाषा है।

पाचवा प्रदीप – जीवन अजेय है जीवन अविनाशी है – वहा मृत्यु का स्पर्श नहीं। इस प्रदीप की सबसे उज्ज्वल शिखा है – जीवन सत्य है, जीवन शिव है, जीवन सुन्दर है।

जीवन देवता की आरती के ये हैं – पच प्रदीप।

झूठी प्रशंसा

एक कौआ जामुन की शाखा पर बैठा था। पके जामुन खा रहा था। इतने मे एक गीदड उधर से निकला और विचार करने लगा – कौए की झूठी प्रशसा कर जामुन खाना चाहिए।

गीदड –

कोय बिदुस्सरो वग्गु पवदतानमुतमो,
अच्चुतो जवू शाखाय मोरच्छापोव कूजति॥

– पूर्ण स्वर वाला, सुदर शब्द वाला, सर्वश्रेष्ठ मीठी वाणी वाला यह कौन जामुन की डाल पर बैठा मोर-बच्चे की भाति कूजता है?

पहला मौका था – कौए की 'काव-काव' प्रशसनीय समझी गई। कौआ गद्‌गद्।

'कुलपुत्र ही कुलपुत्र को समझता है। वही प्रशसा करना जानता है। हे सिह-शिशु की तरह वर्ण वाले! मित्र, मैं तुझे जामुन देता हू, जरा चखकर आतिथ्य ग्रहण करो।'

पेड का देवता क्रुद्ध हो कहने लगा – 'मूर्खो! भागो, झूठी प्रशसा कर सबको, अपने को धोखा मत दो।' डरकर दोनो भाग गए।

यहा तो वृक्ष-देवता जाग रहा था। पर, समाज मे, राष्ट्र मे, देवता कहा, उनकी तद्रा न जाने कब टूटे।

धर्म बुद्धि

एक आदमी औरत के आग्रह के कारण आम लाने के लिए राजा के बगीचे में घुस गया। रात भर पेड पर चढा रहा, लेकिन, आम तोड नहीं सका। भीतर की आवाज आती रही – 'यो आम ताडना चोरी है।'

सुबह दैवयोग से राजा आया। ऊचा सिहासन लगा। उस पर राजाजी बिराजे। सामने जमीन पर बिछे आसन पर बैठकर कोई पडित कथा सुनाने लगा।

डर के मारे वह आदमी पेड से कूदा। राजा के पैरो पर गिरकर कहने लगा – 'मैं चोर हू, मुझे दड दे।' राजा ने सारी बात जानी और उसे छोड दने की आज्ञा दी।

पर, उस आदमी ने कहा – 'राजाजी! मैं दड का पात्र हू, क्षमा का नहीं। आपको दो और को भी सजा देनी है। यहा एक आदमी ऊचा बैठकर कथा सुनता है, अत इस घमडी को दड देना है और दूसरा लोभ या भय के कारण नीचे बैठ कर कथा सुनाता है – यह विनम्रता नहीं, यह धर्म ग्रथ का अपमान है – अत यह पडित दड्य है।'

राजा ने हसते हुए कहा – 'तूने मेरी आखें खोल दी हैं। ठीक है, तीनो दड्य हैं। आज से कथा सुनने वाला और कथा कहने वाला यथा स्थान ग्रहण करेंगे। तू बना दिया गया है – शहर का कोतवाल। जो धर्म बुद्धि से एक आम को भी तोड नहीं सका – वह प्रजा को तग नहीं कर सकता।'

राजा की जयजयकार होने लगी।

झूठी प्रशसा

एक कौआ जामुन की शाखा पर बैठा था। पके जामुन खा रहा था। इतने मे एक गीदड उधर से निकला और विचार करने लगा – कौए की झूठी प्रशसा कर जामुन खाना चाहिए।

गीदड –

कोय बिदुस्सरो वग्गु पवदतानमुत्तमो,
अच्चुतो जबू शाखाय मोरच्छापोव कूजति॥

– पूर्ण स्वर वाला, सुदर शब्द वाला, सर्वश्रेष्ठ मीठी वाणी वाला यह कौन जामुन की डाल पर बैठा मोर-बच्चे की भाति कूजता है?

पहला मौका था – कौए की 'काव-काव' प्रशसनीय समझी गई। कौआ गद्‌गद्।

'कुलपुत्र ही कुलपुत्र को समझता है। वही प्रशसा करना जानता है। हे सिह-शिशु की तरह वर्ण वाले! मित्र, मैं तुझे जामुन देता हू, जरा चखकर आतिथ्य ग्रहण करो।'

पेड का देवता क्रुद्ध हो कहने लगा – 'मूर्खो! भागो, झूठी प्रशसा कर सबको, अपने को धोखा मत दो।' डरकर दोनो भाग गए।

यहा तो वृक्ष-देवता जाग रहा था। पर, समाज मे, राष्ट्र मे, देवता कहा, उनकी तद्रा न जाने कब टूटे।

धर्म बुद्धि

एक आदमी औरत के आग्रह के कारण आम लाने के लिए राजा के बगीचे मे घुस गया। रात भर पेड पर चढा रहा, लेकिन, आम तोड नहीं सका। भीतर की आवाज आती रही – 'यो आम तोडना चोरी है।'

सुबह दैवयोग से राजा आया। ऊचा सिहासन लगा। उस पर राजाजी बिराजे। सामने जमीन पर बिछे आसन पर बैठकर कोई पडित कथा सुनाने लगा।

डर के मारे वह आदमी पेड से कूदा। राजा के पैरों पर गिरकर कहने लगा – 'मैं चोर हू, मुझे दड दे।' राजा ने सारी बातें जानी और उसे छोड देने की आज्ञा दी।

पर, उस आदमी ने कहा – 'राजाजी! मैं दड का पात्र हू, क्षमा का नहीं। आपको दो और को भी सजा देनी है। यहा एक आदमी ऊचा बैठकर कथा सुनता है, अत इस घमडी को दड देना है और दूसरा लोभ या भय के कारण नीचे बैठ कर कथा सुनाता है – यह विनम्रता नहीं, यह धर्म ग्रथ का अपमान है – अत यह पडित दड्य है।'

राजा ने हसते हुए कहा – 'तूने मेरी आखें खोल दी हैं। ठीक है, तीनों दड्य हैं। आज से कथा सुनने वाला और कथा कहने वाला यथा स्थान ग्रहण करग। तू बना दिया गया है – शहर का कोतवाल। जो धर्म बुद्धि से एक आम को भी तोड नहीं सका – वह प्रजा को तग नहीं कर सकता।'

राजा की जयजयकार होने लगी।

पख चलाना बन्द न कर

अभी विश्राम का समय कहा। सामने अधूरे उद्देश्य पडे हैं, तूफान थमा नहीं है। दूर क्षितिज पर उषा न जाने कहा अधेरा को ओढे सोई है।

अभी कहीं स्वागत का गीत नहीं है। कहीं नीड नहीं हैं, नीचे विश्राम की पुष्प-शय्या नहीं है। केवल आकाश है, नीला फैला आकाश कर्मक्षेत्र का विशाल प्रागण। अभी रुकने का समय नहीं।

अभी पख समेटने का समय नहीं है। पखो को फैलाओ, तूफानो पर तैरने दो, अभी केवल उडना है, उडते जाना है। पखो के फैलाव के सामने यह आकाश कितना छोटा है। दूर तक फैली दृष्टि के सम्मुख अधेरा कितना क्षुद्र

'तबु विहग। ओरे विहग मोर,
पखनि अध, बध कोरो ना पाखा।'

– रवींद्र नाथ ठाकुर

– 'तो भी। हे पक्षी, हे मेरे प्यारे पक्षी,
अरे नासमझ। अभी पख चलाना बद न कर'।

यही जीवन है – निरतर कर्मधारा का अजस्र प्रवाह। गीता के कर्मयोग का निनाद ही 'चरैवेति' बस, चलते ही रहो– 'के स्वर्ण सगीत मे ध्वनित है। वही भाव यहा है – 'बध कोरो ना पाखा।'

मच्चा साधक

चित्र, शिल्प म्थापत्य और काव्य के प्रतिभाशाली कलाकार माईकेल एञ्जेलो एक रात अपना शिल्प कृति को पूर्ण करने के लिए अपनी छेनी चला रहे थे। इतने म खबर आइ कि एक प्रतिभाशाली नवयुवक चित्रकार रफायेलो की आखिरी घडा है। शिल्पकार्य अधूरा छोडकर आधी रात को वे रफायेलो के घर की ओर जाने के लिए निकल पडे।

रास्ते मे उन्ह यह सूचना मिली कि रफायेलो की आखे सदा के लिए बद हो गई हैं। वे एक बार ढाढस खो बैठते हैं। ज्यो-त्यो कर अपने कार्य कक्ष की ओर लौट पडते हैं।

अतर्मथन हो रहा है - 'पिछले साल लियोनार्दो गए, आज रफायेलो' इसके बाद भीतर से विद्युत् वेग की धारा दौडती है और कहने लगते हैं -

'हम शक्ति का एक-एक बिंदु सभाले रहे और काम किए जाए।'

कर्म करन की यह दीप्ति - यही तो धर्म है। सच्चा साधक जाने अनजाने धुन का धनी रहकर ही जीता है।

न्याय का तराजू

इंगलैंड मे चतुर्थ हेनरी का शासन था। एक बार एक न्यायाधीश ने एक आदमी के किसी अपराध पर कैद की सजा सुनाई वह आदमी हेनरी के बडे पुत्र का मित्र था। हेनरी चतुर्थ का लडका बिगड गया और न्यायाधीश के साथ बेअदबी कर उसने अपने मित्र को छाड दन का हुक्म दिया। राज-पुत्र ने कहा-'यह मेरा मित्र हैं। मैं प्रिस आफ वेल्स के नाते आपको आदेश देता हू कि इसे छोड दो।'

न्यायाधीश - 'मैं यहा प्रिस आफ वेल्स को नहीं पहचानता। न्याय के काम मे पक्षपात नहीं करूगा। यह मैंने शपथ ली है।'

राजपुत्र आग बबूला हो गया। उसने भरी अदालत मे न्यायाधीश के गाल पर थप्पड जड दी।

न्यायाधीश ने राजपुत्र और उसके मित्र को तत्काल जेल भेजने का आदेश दिया। न्यायाधीश ने राजपुत्र से कहा-'आगे आपको राज्यारूढ होना है। यदि स्वय आप अपने बनाए कानून की अवज्ञा करेगे तो आपके आदश को कौन मानगा।'

राजपुत्र के मन मे तत्काल प्रकाश हुआ। वह लज्जित हुआ। सिर नवा कर न्यायाधीश को मुजरा किया और जेल की ओर चल पडा।

राजा हेनरी चतुर्थ को पता चलने पर उसने कहा, - 'मैं धन्य हू, जिसके राज्य मे ऐसा निष्पक्ष न्यायाधीश है।'

न्याय के तराजू की डडी सीधी रहे, न इधर झुके और न उधर। इसी का नाम तो रामराज्य है।

चिंतन मनन

कोई तो कहे – 'जागते रहो'

एक था राजा। उसकी सात रानिया। छह को सुहाग, एक को दुहाग (परित्यक्ता)। छह रानियो के राजकुमारो को बेहद लाड-प्यार, वे निकम्मे थे। पर, बेचारी दुहागिन का लडका दुबला-पतला, बेडौल, नाटा- पर अच्छा। उपेक्षा के रहते हुए भी वह सभी भाइयो का हित चाहे। उसे सब मजाक मे 'गुटिया राजा' कहते थे।

एक बार छह राजकुमार घोडो पर सवार हो यात्रा पर निकले। वह दुहागिन का लडका 'गुटिया राजा' भी मा से आज्ञा लेकर साथ हो लिया। वह सवार हुआ- एक बिल्ली पर। बिल्ली बडी तेज- खूब दौडे।

बीच में आया नाला। घोडे रुक गए। गुटिया राजा ने घोडो को अपना तकुवा चुभाया- घोडे नाले के पार। इधर गुटिया की बिल्ली भी उछलकर नाले के पार।

सातो एक बुढिया के घर मे रुके। छहो का खूब स्वागत- सब खा-पीकर मजे में सो गए। वह बुढिया खराब औरत थी, वह चाहती थी- इनका माल अपने कब्जे मे करना। बेचारे गुटिये को वहा कौन पूछे।

रात को वह बुढिया उठी और अपनी छुरी पर धार देने लगी। गुटिया- 'क्या कर रही हो, मा।' बुढिया- 'चुप रह, सो जा। मैं साग-सब्जी के लिए छुरी को धार दे रही हूं।'

गुटिया झूठमूठ सोया, आख खोलकर देखता रहा। देखा वह बुढिया छुरी को रगडकर धारदार बना रही है। गुटिया जोर से चिल्लाया-

'गुटिया राजा जागै है। डाकण छुरी पलारै है।'

-गुटिया राजा जग रहा है।' भाइयो जागो। देखो, यह बुढिया बुढिया नहीं है, डाकिन है जो हमें मारने के लिए छुरी पैनी कर रही है।'

-छहो जग पडे और उन्होने बुढिया को अधमरा कर दिया।

यह पुरानी कहानी है- और भी लबी है, गुटिया राजा उन्हे बचाता रहा है, सजग करता रहा है।

पर, यह तो इतिहास है। (गुटिया राजा- याने बहुत से लोग हैं, अच्छे हैं, उनकी उपेक्षा है, बेचारे लाड सम्मान से वचित, फिर भी उनमें न कुठा, न पीडा और सदैव सबको चेताने का स्वभाव।)

इस समय हमारे राष्ट्र मे भी सुविधा भोगी राजकुमार सोए पडे है, चारो ओर अनेक प्रकार से डाकिने छुरी तेज कर रही है- कोई तो, कहीं तो ये गुटिये राजा- ये साहित्यकार, पत्रकार, कलाकार- चिल्ला कर कहते रहें- 'गुटियो राजा जागे है।'

फिर राष्ट्र सजग!

गोरख की वाणी कभी मद न पडे-

'जाग मच्छदर, गोरख आया।'

न्याय के लिये भटकन

एक चिडी को मिला लाल और कौवे को मिला मोती। कौवा- 'चिडी बाई! मुझे लाल दिखाओ।' चीडी ने लाल दिखाया, कौवे ने ले लिया। अब वापस दे नहीं। चीडी अब फरियाद करने कहा जावे।

चिडी – 'पेड रे पेड! तू कौवे को उडा।' 'मैं क्या उडाऊ, मेरा क्या लिया?' 'बढई रे बढई! इस पेड को काट।' 'मैं क्यों काटू, मेरा क्या लिया?' 'राजा रे राजा! इस बढई को दड दें।' 'मैं क्यो दड दू, मेरा क्या लिया?' 'रानियो हे रानियो! राजाजी से रूठो।' 'हम क्यो रूठें, हमारा क्या लिया?' 'चूहो हे चूहो! रानियो के कपडे काटो।' 'हम क्यों काटे, हमारा क्या लिया?' 'बिल्लियो! तुम चूहों को खाओ।' 'हम क्यों खावे?' 'कुत्तो! तुम बिल्लियों को खाओ।' 'हम क्यों खावें?' 'डाग हे डाग (लट्ठ)! तुम कुत्तो को मारो।' 'हम क्यों मारें?' 'हे आग! तुम डाग को जलाओ।' 'हम क्यों जलाव?' 'हे पानी! तुम आग को बुझाओ।'

अब पानी ने इस चक्र को घुमाया। पानी ने कहा – 'हा, मैं आग को बुझाऊगा।' अब बाकी के सब डर गए। आग लकडी को जलाने, लकडी कुत्ते को मारने, कुत्ता बिल्ली पर झपटने, बिल्ली चूहे को निगलने, चूहा रानियो के वस्त्र काटने, रानिया राजा से रूठने, राजा रानिया के रूठने से डरकर बढई को दड देने, बढई नीम का पेड काटने को तैयार हुआ। अब नीम ने कहा – 'मैं कौवे को अपने ऊपर से उडा दूगा।

इससे कौवा डरा और उसने चिडी को उसका लाल दे दिया।

यह कहानी है – बाल कहानी, जिसमें आखिर न्याय मिला, पर मिला – चक्कर से। फिर भी मिला।

पर, व्यवहार में चिडी बेचारी दर-दर भटकती है, न्याय नहीं मिलता। शासन चुस्त दुरुस्त हो, सजग हो, पूरा तत्र लगे तब न्याय के तराजू का दड सीधा रहे। नहीं तो 'पखा न्याव।' यानी पक्षपात से भरा है न्याय।

दो ग्रीवा - पेट एक

अकेला न खावे, बाट कर खावे, यह केवल उपदेश या आदेश नहीं है, जीवन मे जीन की कला है। नहीं तो विनाश मुह फाडे खडा है।

एक चिडिया है, कहानी की, काल्पनिक मिथकीय चिडिया - भारुड नाम की। भारुड के एक उदर है और दो अलग-अलग ग्रीवाए हैं, अलग-अलग चोचे हैं।

एक बार यह भारुड समुद्र के किनारे बैठा था। सौभाग्य से समुद्र की लहरो में एक फल बहता हुआ आया। भारुड की एक ग्रीवा ने उसे उठाया, जरा सा चखा - स्वाद मीठा अमृत जैसा। एक ग्रीवा ने दूसरे मे कहा - 'कैसी कृपा है - दैव की, आज मुझे अमृत सा मीठा फल चखने को मिला है।' दूसरी ग्रीवा - 'थोडा मुझे भी चखने को दो, जिसस मैं जिह्वा-सुख का मजा ले सकू।' पहली ग्रीवा - 'अलग स्वाद लेकर क्या करेगी, अपना पेट तो एक ही है न।' यो कहकर पहली ग्रीवा दूसरी को तरसाती हुई अकेली ही उस गटक गई। दिन बीतते गए। एक दिन दूसरी ग्रीवा को एक जहरीला फल मिला, उसके मन मे बदले की भावना थी, वह जैसे ही विष फल को खाने लगी तो पहली ने कहा - 'अरी मूर्खा! इसे न खा, हमारा पेट एक है - हम दोनों का विनाश होगा।' पर, क्रोध व प्रतिशोध में अधी उस दूसरी ग्रीवा ने उसे खा लिया और भारुड मर गया।

पचतत्र की यह कथा - हमें चेता रही है-

"एकोदरा पृथग्ग्रीवा अन्योन्यफल भक्षिण ।
असहता विनश्यन्ति भारुडा इव पक्षिण ॥"

दो गर्दन वाला पर एक पेट वाला भारुड पक्षी आपस मे न मिलने के कारण एक-दूसरे से विपरीत अकेले-अकेले फल को खाकर विनाश को प्राप्त हुआ।'

हमारी ससद् या विधानसभाए अलग-अलग हैं, पर पेट एक है - राष्ट्र के रूप मे। अलग-अलग राजनीतिक दल उसकी पृथक् ग्रीवाए हैं - राष्ट्र हित में उनका लक्ष्य एक हो, तभी राष्ट्र का विकास सभव है।

अधेर नगरी का खुला नाटक

एक छोटा-सा कस्बा है। गायें इधर उधर मुहल्लो मे घूमती हैं और गोबर कर देती हैं। छोटी छोटी लडकिया गोबर इकट्ठा करती हैं, कडे बनाती हैं और काम चलाती हैं। एक आदमी भी कस्बे मे दिन भर चक्कर लगाता और गोबर इकट्ठा कर काम चलाता है।

गोबर के चारो ओर कोई दौडकर अपनी अगुली से बालू रेत मे घेरा बना दता है- तो वह गोबर उसी का। यह भी इस धधे की एक आचार सहिता है। वह आदमी अब बूढा हो चला है, लडकिया दौड कर गोबर पर अधिकार जमा लेती है। बूढा चिढता है, तुनकता है और कहता है-

'याद रखो, मैं जब इस गाव का ठाकुर हो जाऊगा तो सारे गाव मे ढिढोरा पिटवा दूगा कि अब कोई भी गोबर नहीं उठा सकता। मैं ही अकेला गोबर उठाऊगा, यदि दूसरा उठाएगा तो उसे दो साल की जेल।' यह सुनकर सब हसते। पर, वह बूढा यही कहता रहता।

बात चाहे विनोद की लगे। आज भी तो हम यही कह रहे हैं- 'मैं यदि जीत गया तो अमुक गाव को निहाल कर दूगा, फला जाति की पौ बारह, अमुक दल ही बादल बन सब को ढक लेगा- यानी हम विजयी बन दिल्ली के तख्त को हथियाना तो चाहते हैं- सारे देश के मालिक भी बनना चाहते हैं, सब से लेना-कर वसूलना भी चाहते हैं-पर, देना चाहते हैं- अपने को, अपने परिवार को, अपने दल को, अपने दल बदल को।'

यहा तो यही कहावत लागू होती है-

'मामे रो ब्याव मा पुरसगारी
जीमो रे बेटा! रात अधारी!'

मामा का विवाह है, मा परोसने का काम करने वाली है। देखने वाला कोई नहीं। भोजन करने वाले अपने बेटे हैं। इधर रात अधेरी है।' खूब छक कर खाओ'।

भारतेन्दु की 'अधेर नगरी' आखिर कब तक रहेगी! काश, वह इतिहास की धरोहर ही होती!

चिंतन मनन

ढाई आखर प्रेम का

सर्वानंद नाम का विद्वान, जिसने शास्त्रार्थ मे बडे-बडे पडितो को पछाड दिया था, इस खुशी मे उसने अपना नाम रखा-सर्वजित। सर्वजित काशी से अपने गाव आया। उसने देखा, उसकी मा कबीर के बनाए हुए नाम को जपती है।

सर्वजित- 'क्या जपती है, कबीर तो है-बेपढा।'

मा- 'बेटा, वह सत है, प्रभु का प्रेमी है।'

सर्वजित- 'मैं जाता हू-काशी, उसे हराकर, जीत का पट्टा लिखाकर लाता हू। फिर, मेरे रास्ते पर चलना।'

मा ने हा भरी। सर्वजित पोथो से बैल लादे काशी पहुचा। कबीर के निवास पर पहुचकर उसने कबीर को ललकारा। घर से कबीर की लडकी कमाली बाहर आई। सर्वजित- 'कबीर कहा है मैं उसे हराने आया हू।'

कमाली ने झुककर प्रणाम किया और कहा- 'कबीर जी तो यहा कहा, अभी शिखर पर है। आप वहा कैसे जाएगे? वह राह ऊची, रपटीली है, चींटी भी चढ नहीं सकती।

कबीर का घर शिखर पर, जहा सिलहिली गैल।
पाव न टिके पिपीलिका, पडित लादे बैल॥

सर्वजित कुछ समझ न पाए-इस पहेली को। इतने मे कबीर जी आ गए। पडित ने कहा- 'मैं आप को चुनौती देता हू-शास्त्रार्थ करो।' कबीर- 'मैं तो अनपढ जुलाहा हू। इतनी पुस्तके तो मैंने कभी देखी नहीं।' सर्वजित- 'तो लिख दो-तुम हार गए।' कबीर- 'मैं तो हारा हुआ ही हू मैं लिखना नहीं जानता।' पडित ने कागज निकाल कर लिखा- 'सर्वजित ने कबीर को हरा दिया।' और कहा- 'अपने हस्ताक्षर तो करना जानते हो न।' कबीर- 'बस, इतना-सा आता है।' कबीर ने अपने दस्तखत कर दिए। वह पडित जोश मे भरा पहुचा गाव और मा के सामने उसने कागज दिखाया।' बेटा, क्या लिखा है तू ही पढकर सुना दे।' पत्र मे लिखा मिला- 'कबीर ने सर्वजित को हरा दिया' पडित आख फाड़े पत्र को देखता रहा। पडित ने दुबारा जाकर नया पत्र लिखा-क्रोधाध होकर, पर, फिर वही भूल।

सर्वजित ने अत मे हार कर मा से कहा- 'मा कबीर ही सही है। वह आखो देखी साखी भरता है। और मैं-कहा मैं।

पोथी पढि पढि जग मुआ, पडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढै सो पंडित होय॥

पात-पात को सींचिबो

मा बीमार थी, उसे अपनी बीमारी की चिता कम थी और अपने द्वारा लगाए गए नए पौधो की चिता अधिक। उसने अपने एकमात्र छोटे बेटे स कहा, 'जरा, बगीचे में जाकर नए पौधों को सींचते रहना, उनका ध्यान रखना।' बच्चा बहुत होशियार और मा का पक्का भक्त था।

वह सुबह जल्दी उठता, पानी की झारी ले जाता। एक-एक पौधे के एक-एक पत्ते को खूब दुलराता, प्यार करता। पत्ते-पत्ते को पानी से धोता, हल्के हाथो कपडे से पोछता, उनकी धूल झाडता और उन्हे चमकाने का प्रयास करता। मा उसकी बाते सुनकर प्रसन्न होती कि बच्चा पौधो की खूब सार सभाल करता है।

थोडे दिनो मे मा ठीक हो गई। वह लडके के साथ बगीचे मे गई। वहा देखती है कि सारे पौधे मुरझाए पडे हैं। मा का चेहरा उतर गया- 'बेटे। तू तो कहता था कि मैं पौधो को प्यार से सींचता हू। पर, ये तो सब मर से गए हैं।' बच्चे की आखो म आसू आ गए और कहन लगा- 'मा। मैं क्या करता। मैं हमशा आता रहा हु, एक-एक पत्त को मैंन पानी स गीला किया हे, उसे पाछा है, धूल से बचाया हैं।' मा कुछ न बाली, समझ गई। मन ही मन बोली-इसे एक-एक पत्ते से प्यार था डाली-डाली से यह उलझा था- पर, यह नासमझ भूल गया इनकी जडा का सींचना सबका सींचना है।

'छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्।'

जड जब कट गई तो कहा की डालिया और कहा के पत्ते। बच्चा तो भोला था, क्षम्य था। पर, हम स्वार्थांध होकर क्या ऐसी मूर्खता, नहीं कहना चाहिए दुष्टता नहीं कर रहे हैं- क लिए कवि की यह उक्ति हम चता रही है-

पात-पात को सींचिबो, मौन।

' 'ऐसी बुद्धि नै

कहीं हम के नशे मे को भी

के शिकार

मनो देवता

मन चचल है। यह शिकायत सही है। पुरानी है। वीर अर्जुन ने मन के सबध मे जो भी कहा, वह आज भी सही है।

अर्जुन ने कहा, जिसे हम आज यो कह सकते हैं। वह मन चचल है। चचल है-जैसे मृग छौना, जैसे बदर, जैसे बालक। तो डर क्या है? नहीं-नहीं और भी तो मन का झगडा है। यह मन प्रमाथी है, मथ देता है, मथकर उथल-पुथल मचाता है - जैसे दधि विलोडन। और सुनिये। यह मन बलवान भी है, सिह सा प्रचड और है अडियल जिद्दी, टूठ-सा खभे सा अडिग। इसको वश मे करना इतना कठिन, ऐसा कठिन-जैसे हवा को काबू मे करना।

ये चित्र हैं - मन की दुर्निवार चचलता और प्रचडता के। सभवत और भी चित्र उभारे जा सकते हैं।

पर, मन को वश मे किया जा सकता है। उपाय दो हैं - अभ्यास और वैराग्य। ये दोनो पुराने शब्द हैं। आज भी नए उपाय कहा? मन को ऊचे उद्देश्य मे लगाना है, वह भागे तब भी धीरज से प्यार से, सभल कर, उत्साह से - लगाना है, बस - लगाना है - लगाते ही रहना है। यही अभ्यास है। अभ्यास का अर्थ है - दीर्घकाल, निरतर, उत्साह और प्रेम। वैराग्य का अर्थ है - अपनी शक्तियो को इधर-उधर बिखरने से रोककर - फालतू झझटो से हटकर - एक तरफ लगाना। विराग का असली अर्थ है - अनुराग को गहरा बनाना।

मन-नदी मे बाढ आती है तो डर क्या? उसे वैराग्य से बाधो और नई-नई नहरे निकालकर - अभ्यास के नए-नए रास्ते बनाकर - रचनात्मक रूप दो - यही विज्ञान है, यही ज्ञान है। फिर पता चलेगा - मन कितना रचनात्मक, प्रिय और आगे बढाने वाला कैसा उपयोगी साधन है।

'तन्मे मन शिव सकल्पमस्तु।' यह मन-शैतान नहीं, मनो देवता है - ऋषि के शब्दो मे। बस, इसमे शिव (कल्याणकारी) सकल्प भरे, इतना ही बस।

क्या यह न्यायोचित है?

एक ही कार्य है। सभी लोग करने के पहले अपने अपने ढग से विचार करते हैं। पर, उनके उद्देश्य अलग-अलग होते हैं। इसलिए जब कार्य सपन्न करना होता है तो एकता का एक प्रहसन होता है। जब फल मिल जाता है, और सामने सफलता के रूप में सेवा का नहीं, सुख सुविधाओं का अबार दीखता है – तो सारे भेद खुलने लगते हैं। अब शुरू हो जाता है – अत सघर्ष। जिसका अत होता है – शत्रुता में, प्रतिशोध और वैर विरोध में।

कार्य प्रारभ करने के पहले कायरता पूछती है – क्या यह भय रहित है?

स्वार्थ पूछता है – क्या यह व्यावहारिक है? लाभप्रद है?

अहकार पूछता है – क्या यह लोकप्रिय है?

अत करण पूछता है – क्या यह न्यायोचित है?

सभवत अत करण तो सभी का पूछता होगा। पर, सुनते बिरले हैं।

सात्त्विक कार्य तो समाज में होते हैं, पर, उनके पीछे सात्त्विक वृत्ति का प्राय अभाव होता है। पीछे होते हैं अहकार, प्रच्छन्न लोभ और यशोलिप्सा का वेग।

सात्त्विक कार्यों के पीछे सात्त्विक प्रेरणा हो – तभी सही लक्ष्य सिद्धि होती है।

राख या भभूत

कल्पना कीजिए -

एक मोम का मदिर है, विशाल और कलापूर्ण। उस मदिर में एक मुनि बैठाया गया है। वह मुनि मक्खन का बनाया गया है। भयकर ठडक है। मुनि अकड कर बैठा है।

इधर नीचे जिस पर आसन जमाया गया है, वह आसन हुताशन (अग्नि) का है। आग की लपटों में अब सब कब तक? ऐसा ही है - यह सासारिक ठाटबाट। पल भर का खेल है। इस पर गर्व कैसा, विश्वास कैसा।

कवि के शब्दों में चित्र यह है -

'मोम के मदिर, माखन का मुनि,
बैठा हुताशन आसन दीन्हे।'

नाशवान् पदार्थों को नाशवान् ससार की सेवा मे समर्पित करना - प्रेम से, निरहकार होकर - इसी का नाम भक्ति है। यही ज्ञान है और यही दूरदर्शिता है।

ससार के पदार्थों से चिपटा वह राख बना, इनमें रहते हुए भी जो अनासक्त रहा - वह 'भभूत' (विभूति) बन गया। पृथ्वी ऐसी ही विभूतियों से गौरवमय है।

क्या यह न्यायोचित है?

एक ही कार्य है। सभी लोग करने के पहले अपने अपने ढग से विचार करते हैं। पर, उनके उद्देश्य अलग-अलग होते हैं। इसलिए जब कार्य सपन्न करना होता है तो एकता का एक प्रहसन होता है। जब फल मिल जाता है, और सामने सफलता के रूप में सेवा का नहीं, सुख सुविधाओं का अबार दीखता है – तो सारे भेद खुलने लगते हैं। अब शुरू हो जाता है – अत सघर्ष। जिसका अत होता है – शत्रुता में, प्रतिशोध और बैर विरोध में।

कार्य प्रारभ करने के पहले कायरता पूछती है – क्या यह भय रहित है?

स्वार्थ पूछता है – क्या यह व्यावहारिक है? लाभप्रद है?
अहकार पूछता है – क्या यह लोकप्रिय है?
अत करण पूछता है – क्या यह न्यायोचित है?

सभवत अत करण तो सभी का पूछता होगा। पर, सुनते बिरले हैं।

सात्त्विक कार्य तो समाज में होते हैं, पर, उनके पीछे सात्त्विक वृत्ति का प्राय अभाव होता है। पीछे होते हैं अहकार, प्रच्छन्न लोभ और यशोलिप्सा का वेग।

सात्त्विक कार्यों के पीछे सात्त्विक प्रेरणा हो – तभी सही लक्ष्य सिद्धि होती है।

राख या भभूत

कल्पना कीजिए -

एक मोम का मदिर है, विशाल और कलापूर्ण। उस मदिर मे एक मुनि बैठाया गया है। वह मुनि मक्खन का बनाया गया है। भयकर ठडक है। मुनि अकड कर बैठा है।

इधर नीचे जिस पर आसन जमाया गया है, वह आसन हुताशन (अग्नि) का है। आग की लपटों में अब सब कब तक? ऐसा ही है - यह सासारिक ठाटबाट। पल भर का खेल है। इस पर गर्व कैसा, विश्वास कैसा!

कवि के शब्दों में चित्र यह है -

'मोम के मदिर, माखन का मुनि,
बैठा हुताशन आसन दीन्हे।'

नाशवान् पदार्थों को नाशवान् ससार की सेवा में समपित करना - प्रेम से, निरहकार होकर - इसी का नाम भक्ति है। यही ज्ञान है और यहीं दूरदर्शिता है!

ससार के पदार्थों से चिपटा वह राख बना, इनमें रहते हुए भी द अनासक्त रहा - वह 'भभूत' (विभूति) बन गया। पृथ्वी ऐसी हीं विभूतियों से गौरवमय है।

दिन का मोल वसूले

सूरज हमारे लिए नारायण है। पर, धरती के लिए वह केवल आग का गोला हो, ऐसा नहीं - वह ऊर्जा का स्रोत है। हमने पर्यावरण को न समझकर - धरित्री को केवल दुहा ही नहीं - इसको तोड फोड कर रख दिया है। अब धरती के पास ऊर्जा कम है, हम अब सूरज की ओर, हवा की ओर, बहते पानी की ओर ऊर्जा के लिए हाथ जोडे खडे हैं।

हमारा मिथक कहता है - सूरज के दो पुत्र हैं - एक यमराज और एक शनैश्चर। सूरज का पुत्र यम? कितना बुरा लगता है। पर, है - यह सही। सूरज से ही दिन रात का कालचक्र घूमता है और वह हमारे लिए दिन बनाता है और हमारी आयु से एक दिन छीन लेता है - अत हमे लगा कि सूरज से उत्पन्न हुए दिन बीतते हैं और वे हमारी आयु को खाकर हमे मौत की ओर धकेल रहे हैं।

ठीक है सूरज हमारा एक दिन घटा देता है - आओ उस दिन का मोल वसूले। प्रतिदिन हम कोई अच्छा काम करे, किसी को दु ख न दे, किसी का बुरा न सोचे, मेहनत करे, हो सके तो दूसरे की भलाई करे या शुभ चितन ही करे तो समझो हमारा सौदा घाटे का नहीं रहा। हमने लाभ कमाया। इधर - शनैश्चर हैं - धीमे चलता है - हम सुस्त न रहे, तेज कदम रख - वह शनैश्चर - हमेशा पीछे रहे - हम उसके हाथ न आए।

भक्त के लिए तो इतना विश्वास ही काफी था कि 'माखन चाखन हारो, सो राखन हारो' है तो कहा करि है 'रबिनद बेचारो' - सूरज का बेचारा लडका यमराज हमारा क्या करेगा। मक्खन चखने वाला हमारी रक्षा कर रहा है।

पर, हम जो साधारण हैं - उनके परित्राण का मार्ग हैं - शुभ कर्म शुभ विचार और श्रम।

अभूतपूर्व दृश्यो के सच्चे अर्थ

महाभारत का महासमर समाप्त। पाडव विजयी हुए और समझाने-बुझाने से राज करने लगे। एक दिन भगवान कृष्ण पाचों पाडवो को लेकर घूमन निकले। बाहर एक स्थान पर रुक गए। कहने लगे - 'मैं यहा इस वृक्ष के नीचे विश्राम करूगा। तुम पाचो भाई अलग-अलग दिशाओ मे घूम आओ और साझ को मुझ से यहीं पर मिलो।'

पाच भाई अलग-अलग दिशाओं मे गए और अभूतपूर्व विचित्र दृश्य देखकर चकित से लौट आए।

कृष्ण ने पूछा - 'अपने-अपने अनुभव सुनाओ।' युधिष्ठिर- 'हृषीकेश। मैंने एक हाथी को देखा, जिसके दो मूडे थीं।

ऐसा विचित्र प्राणी मुझे प्रथम बार मिला।'

कृष्ण - 'यह हाथी नहीं था-अन्यायी शासक का प्रतीक था - जो जनता को दोनों ओर से खाता है। करो के भार से दबाकर उसका कचूमर निकाल देता है।'

अर्जुन - 'हे माधव। मैंने देखा - एक पक्षी - जिसके पखो पर वेद की ऋचाए लिखी थीं। वह मृत पशु खा रहा था।'

कृष्ण - 'यह पक्षी तुम्हे समझा रहा था कि बहुत से पोथी के पडित होते हैं, चरित्र से हीन। अत पठन की सार्थकता चरित्र मे है।'

भीम - 'हे पुडरीकाक्ष। मैंने एक गाय को देखा, जो बछडे को चाटते-चाटते लहू लुहान करने मे लगी थी।'

कृष्ण - 'यह उन मूर्खा माताओ के मोह का चित्र है - जो लाड - प्यार के भ्रम स बच्चो का अहित करती हैं।'

सहदेव - 'प्रभो। मैंने देखा - पाच कुए हैं - जिनमे चार कुए तो पानी से भर छलक रहे हैं और बीच वाला एकदम सूखा है।'

कृष्ण - 'यह विकृत समाज का दृश्य है - जिसमे लोग अपने भाग विलास मे धन फूकते हैं पर अपने पडोसी के भूखे हाने पर भी सहयोग नहीं दते।'

नकुल - 'ह मधुसूदन। मैंने देखा - एक फिसलती हुई चट्टान-चट्टानों से नहीं रुकी, पर छोटे से तिनके से रुक गई।'

कृष्ण - 'इसका मतलब है कि घमडी गिरगा - सत्ता और सपत्ति उस गिरने से नहीं रोक सकतीं - हा, विनम्रता आ जाए तो वह अपने को पतन से राक सकता है।'

भगवान् ने इस प्रकार पाचो पाडवा को अद्भुत दृश्यो के माध्यम से उपदेश दिये।

दिन का मोल वसूले

सूरज हमारे लिए नारायण है। पर, धरती के लिए वह केवल आग का गोला हो, ऐसा नहीं - वह ऊर्जा का स्रोत है। हमने पर्यावरण को न समझकर - धरित्री को केवल दुहा ही नहीं - इसको तोड फोड कर रख दिया है। अब धरती के पास ऊर्जा कम है, हम अब सूरज की आर, हवा की ओर, बहते पानी की ओर ऊर्जा के लिए हाथ जोडे खडे हैं।

हमारा मिथक कहता है - सूरज के दो पुत्र हैं - एक यमराज और एक शनैश्चर। सूरज का पुत्र यम? कितना बुरा लगता है। पर, है - यह सही। सूरज से ही दिन रात का कालचक्र घूमता है और वह हमारे लिए दिन बनाता है और हमारी आयु से एक दिन छीन लेता है - अत हमे लगा कि सूरज से उत्पन्न हुए दिन बीतते हैं और वे हमारी आयु को खाकर हमे मौत की ओर धकेल रहे हैं।

ठीक है, सूरज हमारा एक दिन घटा देता है - आओ उस दिन का मोल वसूले। प्रतिदिन हम कोई अच्छा काम करें, किसी को दु ख न दे, किसी का बुरा न सोचे, मेहनत करे, हो सके तो दूसरे की भलाई कर या शुभ चितन ही कर तो समझो हमारा सौदा घाटे का नहीं रहा। हमने लाभ कमाया। इधर - शनैश्चर हैं - धीमे चलता है - हम सुस्त न रहे तेज कदम रखे - वह शनैश्चर - हमेशा पीछे रहे - हम उसके हाथ न आए।

भक्त के लिए तो इतना विश्वास ही काफी था कि 'माखन चाखन हारो, सो राखन हारो' है तो कहा करि है 'रविनद बेचारो' - सूरज का बेचारा लडका यमराज हमारा क्या करेगा। मक्खन चखने वाला हमारी रक्षा कर रहा है।

पर, हम जा साधारण हैं - उनके परित्राण का मार्ग हैं - शुभ कर्म, शुभ विचार और श्रम।

अभूतपूर्व दृश्यो के सच्चे अर्थ

महाभारत का महासमर समाप्त। पाडव विजयी हुए और समझान-बुझाने से राज करने लगे। एक दिन भगवान कृष्ण पाचों पाडवो को लेकर घूमने निकले। बाहर एक स्थान पर रुक गए। कहने लगे – 'मैं यहा इस वृक्ष के नीचे विश्राम करूगा। तुम पाचो भाई अलग-अलग दिशाओ मे घूम आओ और साझ को मुझ से यहीं पर मिलो।'

पाच भाई अलग-अलग दिशाओं मे गए और अभूतपूर्व विचित्र दृश्य देखकर चकित से लौट आए।

कृष्ण ने पूछा – 'अपने-अपने अनुभव सुनाओ।' युधिष्ठिर- 'हृषीकेश! मैंने एक हाथी को दखा, जिसके दो सूडें थीं।

ऐसा विचित्र प्राणी मुझे प्रथम बार मिला।'

कृष्ण – 'यह हाथी नहीं था-अन्यायी शासक का प्रतीक था – जो जनता को दोनों आर से खाता है। करो के भार से दबाकर उसका कचूमर निकाल देता है।'

अर्जुन – 'हे माधव! मैंने दखा – एक पक्षी – जिसके पखा पर वेद की ऋचाए लिखी थीं। वह मृत पशु खा रहा था।'

कृष्ण – 'यह पक्षी तुम्हें समझा रहा था कि बहुत से पोथी के पडित होते हैं, चरित्र से हीन! अत पठन की सार्थकता चरित्र मे है।'

भीम – 'हे पुडरीकाक्ष! मैंने एक गाय को दखा, जो बछडे को चाटते-चाटते लहू लुहान करने मे लगी थी।'

कृष्ण – 'यह उन मूखा माताओ के मोह का चित्र है – जो लाड – प्यार के भ्रम से बच्चा का अहित करती हैं।'

सहदेव – 'प्रभो! मैंने देखा – पाच कुए हैं – जिनमें चार कुए ता पानी से भरे छलक रहे हैं और बीच वाला एकदम सूखा है।'

कृष्ण – 'यह विकृत समाज का दृश्य है – जिसम लोग अपने भाग विलास में धन फूकते हैं पर अपने पडासी के भूखे होने पर भी सहयाग नहीं देते।'

नकुल – 'ह मधुसूदन! मैंने दखा – एक फिसलती हुई चट्टान चट्टाना से नहीं रुकी, पर छाटे से तिनके से रुक गई।'

कृष्ण – 'इसका मतलब है कि घमडी गिरेगा – सत्ता और सम्पत्ति उसे गिरने से नहीं रोक सकतीं – हा, विनम्रता आ जाए तो वह उसे पतन से रोक सकता है।'

भगवान् ने इस प्रकार पाचो पाडवा को अद्भुत दृश्यों के माध्यम से उपदेश दिये।

मेरा बहिश्त – बेचूगी नहीं

संसार लगता है–एक बाजार है, जहा बहुत कुछ बिकता है, पर, क्या कहीं रुक नहीं जाना चाहिए! बहुत कुछ तो समझ मे किसी तरह आने लगा है–पर, क्या 'सब कुछ'? कहीं–न–कहीं रुकना आवश्यक है, इसी मे मानवीय गरिमा है। अर्थ शास्त्र से ऊपर भी कुछ है, तभी सस्कृति का अमोल होना ध्वनित होगा।

नौसेरवा का महल बन रहा था, उसकी रचनापरिधि मे एक भडभूजिन का भाड आया, वहीं उसका छोटा सा कुटीर निवास भी। बादशाह न्यायी था, उदार था और प्रजा पालक अत कर्मचारियो ने बुढिया को राजी करना चाहा कि वह इसे बच दे। एक ओर पुष्कल धन, निवास के लिए भव्य भवन! पर, उस बुढिया ने कहा–'यह भाड मेरे बाप दादे की निशानी है, उनकी याद है, मेरा बचपन है, मेरी जवानी है, मेरा प्यारा बुढापा है। हजारो अनमोल यादे इस भाड के इर्द गिर्द घूमती हैं। मैं किसी भी कीमत पर इस बहिश्त को बेचूगी नहीं, यह मेरी जीविका है, मेरा सर्वस्व है। मेरा पुण्य, मेरा ईमान।'

बादशाह का महल बना, वह महल भडभूजिन के कारण टेढा खडित सा बना और उस भाड के धुए से महल काला होता रहा। बादशाह और बुढिया की उजली कीर्ति गाथा को आसमान को सुनाता रहा।

कविवर रामावतार त्यागी का यह दर्द युग को क्या चेता नहीं रहा है–

मुझे रोटियो ने बेचा, बाजार ने खरीदा
मुझे कीमती समझकर बाजार ने खरीदा
मै जिदगी मे यारो बिकता चला गया हू
मुझको खबर समझ कर अखबार ने खरीदा

काश, कही से, कभी, कोई बुढिया भी चीखे।

मेढको को तोलना

एक सिह से मुकाबले की जलती हुई समस्या थी। पशु जगत् के आगे आकर 'खरगोश' ने कहा, मैं इस काम को कर सकूगा। पहले भी मैंने सिह को हराया है, कुए मे उसकी परछाईं दिखाकर उसे छला है। पर, पशुओ ने कहा- 'अब कुए कहा, और उपाय तलाशना पडेगा।' खरगोश अपने पुराने अनुभव के बल पर इतरा रहा था, इस समस्या के सामने आने पर वह चुप हो गया और धीरज से कहने लगा- 'आप की बात ठीक, नया उपाय सोचना पडेगा।'

इतने मे मेढको ने उछल-कूद मचाकर अपना दावा पेश किया और समझाया कि यह जमाना अब खरगोश का नहीं। इस खरगोश को एक ओर तराजू पर रखो और इधर हमे- देखो, कौन भारी पडता है। मेढको ने उछल-कूद मचाकर और टर्र-टर्र से अपना आतक जमाया।

पशुजगत् और जलचर जगत् के इस मेल से नया गुल खिलने की उम्मीद जगी। तय हुआ कि तराजू के एक पलडे पर खरगोश रखा जाए और दूसरे पलडे पर मेढको के सयुक्त दल को। तोल कर किसी एक को दायित्व दिया जाय। मेढक धीरे-धीरे शात रह कर, उछल-उछल कर पलडे पर चढ गए। जैसे ही तोलने के लिए तराजू ऊचा उठाया कि जोश मे आकर एक मढक उछला, दूर जाकर टर्र टर्र की 'दादुर धुनि' मचाने लगा। कभी एक मेंढक को पकडकर लाए तो दूसरा उछल जाए। आज तक मेढको को तोलना सभव नहीं हुआ।

आज की हमारी भाषा हराने की है, भिडने और सघर्ष की है- पर, हम सब के ऊपर एक देश है, एक जनमेदिनी है, राष्ट्र है, एक सस्कृति है- एक परपरा है- सेवा हमारा जीवनोद्देश्य बने, तब नई चेतना जगेगी- तब कहीं हम सहयोग, मेल, प्रेम, विश्वास और मैत्री भाव के महत्त्व का आक सकेगे।

मेरा बहिश्त - बेचूगी नहीं

संसार लगता है-एक बाजार है, जहा बहुत कुछ बिकता है, पर, क्या कहीं रुक नहीं जाना चाहिए! बहुत कुछ तो समझ मे किसी तरह आने लगा है-पर, क्या 'सब कुछ'? कहीं-न-कहीं रुकना आवश्यक है, इसी म मानवीय गरिमा है। अर्थ शास्त्र से ऊपर भी कुछ है, तभी संस्कृति का अमोल होना ध्वनित होगा।

नौसेरवा का महल बन रहा था, उसकी रचनापरिधि मे एक भडभूजिन का भाड आया, वहीं उसका छोटा सा कुटीर निवास भी। बादशाह न्यायी था, उदार था और प्रजा पालक, अत कर्मचारियो ने बुढिया को राजी करना चाहा कि वह इसे बेच दे। एक ओर पुष्कल धन, निवास के लिए भव्य भवन! पर, उस बुढिया ने कहा-'यह भाड मेरे बाप दादे की निशानी है, उनकी याद है, मेरा बचपन है, मेरी जवानी है, मेरा प्यारा बुढापा है। हजारा अनमोल यादे इस भाड के इर्द गिर्द घूमती हैं। मैं किसी भी कीमत पर इस बहिश्त को बेचूगी नहीं, यह मेरी जीविका है, मेरा सर्वस्व है। मेरा पुण्य, मेरा ईमान।'

बादशाह का महल बना, वह महल भडभूजिन के कारण टेढा खडित सा बना और उस भाड के धुए से महल काला होता रहा। बादशाह और बुढिया की उजली कीर्ति गाथा को आसमान को सुनाता रहा।

कविवर रामावतार त्यागी का यह दर्द युग को क्या चेता नहीं रहा है-

मुझे रोटियो ने बेचा, बाजार ने खरीदा
मुझे कीमती समझकर बाजार ने खरीदा
मै जिदगी मे यारो बिकता चला गया हू
मुझको खबर समझ कर अखबार ने खरीदा

काश, कही से, कभी, कोई बुढिया भी चीखे।

मेढको को तोलना

एक सिह से मुकाबले की जलती हुई समस्या थी। पशु जगत् के आगे आकर 'खरगोश' ने कहा, मैं इस काम को कर सकूगा। पहले भी मैंने सिह को हराया है, कुए मे उसकी परछाईं दिखाकर उसे छला है। पर, पशुओ ने कहा- 'अब कुए कहा, और उपाय तलाशना पडेगा।' खरगोश अपने पुराने अनुभव के बल पर इतरा रहा था, इस समस्या के सामने आने पर वह चुप हो गया और धीरज से कहने लगा- 'आप की बात ठीक, नया उपाय सोचना पडेगा।'

इतने मे मेढको ने उछल-कूद मचाकर अपना दावा पेश किया और समझाया कि यह जमाना अब खरगोश का नहीं। इस खरगोश को एक ओर तराजू पर रखो और इधर हमे- देखो, कौन भारी पडता है। मेढको ने उछल-कूद मचाकर और टर्र-टर्र से अपना आतक जमाया।

पशुजगत् और जलचर जगत् के इस मेल से नया गुल खिलने की उम्मीद जगी। तय हुआ कि तराजू के एक पलडे पर खरगोश रखा जाए और दूसरे पलडे पर मढको के सयुक्त दल को। तोल कर किसी एक को दायित्व दिया जाय। मढक धीरे-धीरे शात रह कर, उछल-उछल कर पलडे पर चढ गए। जैसे ही तोलने के लिए तराजू ऊचा उठाया कि जोश में आकर एक मेढक उछला, दूर जाकर टर्र टर्र की 'दादुर धुनि' मचाने लगा। कभी एक मेढक को पकडकर लाए तो दूसरा उछल जाए। आज तक मेंढकों को तोलना सभव नहीं हुआ!

आज की हमारी भाषा हराने की है, भिडने और सघर्ष की है- पर, हम सब के ऊपर एक देश है, एक जनमेदिनी है, राष्ट्र है, एक सस्कृति है- एक परपरा है- सेवा हमारा जीवनोद्देश्य बने, तब नई चेतना जगेगी- तब कहीं हम सहयोग, मेल प्रेम, विश्वास और मैत्री भाव के महत्त्व को आक सकेगे।

वह फुर्सत क्या मुझे खायेगी नही!

अमेरिका के इतिहास में नया युग। प्रथम रेलगाडी के रवाना होने का रोमाचक क्षण। हजारो कुतूहल-विस्मित नेत्रो से अभूत दृश्य को पी लेने के लिए उमडती जन-मेदिनी। राष्ट्रपति भी आ गए। सोच रहे थे- 'ये डिब्बे बिना किसी की सहायता से तेजी से चलेंगे! महान् क्राति का नया इतिहास!'

राष्ट्रपति ने पास ही देखा- एक लकडहारा, शात बैठा, अप्रभावित भाव से- हुक्का गुडगुडा रहा है। उसके लिए यह दृश्य जैसे शून्य था। राष्ट्रपति हक्के-बक्के होकर उस सज्जन को देखते रहे और फिर स्वयं उसके पास गए। लोग देखते रहे।

राष्ट्रपति- 'क्यो जड़वत् बैठे हो? देखते नहीं हमारे इतिहास मे क्राति घट रही है। अब यह रेलगाडी- भारी भारी वजन लिए सैकडो मील दौडेगी, लोगो को चढाए!'

लकडहारा- 'तो क्या हो जाएगा?'

राष्ट्रपति ने कहा- 'तू क्या करता है?'

उसने बताया, वह दो दिन जगल में दूर-दूर तक जाकर सूखी लकडिया लाता है, फिर उनके गट्ठर बनाकर पास की बस्ती में ४ दिन बेचने में लगाता है- सप्ताह का एक दिन मजे मे सुस्ताता विश्राम करता है।

राष्ट्रपति- 'तो बस, तेरा काम बन गया- इतना काम अब रेलगाडी के कारण दो दिनो में ही पूरा हो जाएगा।'

लकडहारा- 'मैं बचे हुए चार दिनों मे क्या करूगा- वह फुर्सत मुझे क्या खाएगी नहीं?'

आज विज्ञान ने हमारे समय को घटा दिया है, बचे हुए समय को लगाने के लिए, हम नए-नए काम ढूढते हैं। ऊटपटाग धधे, नई आदतें, नए नशे तलाशते हैं?

थका तन, टूटा मन- और चचल चित्त- क्या इस युग की एक त्रासदी नहीं है!

'अधो की यह दौड लग रही, मतवाला सारा समाज है।'

-कामायनी।

चलते हैं, बहुत तेज- पर इतना रहे खयाल
छुप न जाए मज़िल कहीं गर्दोगुब्बार से।